मानवीय क्रांति

दादा धर्माधिकारी

मानवीय क्रान्ति

[समाज के नव-निर्माण के लिए बुनियादी विचारों की व्याख्या]

दादा धर्माधिकारी

अखिल भारत-सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

भूमिका

दादा धर्माधिकारी के भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ विषयक लेखों का पुस्तकाकार संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है, यह खुशी की बात है। उनके सारे लेख मैं पढ़ नहीं सका हूँ। 'सर्वोदय' में आते थे, तो सरसरी तौर पर मैं देख जाता था। लेकिन जीवन-विषयक बहुत से प्रश्नों पर उनका और मेरा दृष्टिकोण मिलता-जुलता रहा है। विचार-प्रदर्शन का उनका अपना एक ढंग है, जो कुछ लोगों को ग्रहण नहीं होता, जिससे कुछ लोगों को 'शॉक' भी लगता है। लेकिन आधुनिकतम परिभाषा का वे प्रयोग करते हैं, इसलिए शिक्षितों में, खास कर विद्यार्थियों में, उनके शब्द विचार-परिवर्तक साबित होते हैं।

मुझे आशा है, भूदान-यज्ञ के साहित्य में, इस पुस्तक से एक कमी की पूर्ति होगी।

पड़ाव : लक्ष्मीसराय
२७-१०-'५३

—विनोबा

विषय-सूची

मानवीय क्रान्ति

: १ :

गांधी-प्रक्रिया का परिणत स्वरूप

पू० किशोरलाल भाई मशरूवाला ने विनोबा के भूदान-यज्ञ के प्रयोग को 'गांधी-प्रक्रिया का परिणत स्वरूप' कहा था। लेकिन कुछ प्रगतिवादी समाचार-पत्रों ने विनोबा के इस उपक्रम की कड़ी आलोचना की। उनका यह आक्षेप है कि इस प्रकार के आन्दोलन से अराज्यवाद की प्रवृत्ति जोर पकड़ेगी और देश में विधि-युक्त सत्ता की प्रतिष्ठा नहीं रहेगी।

जनता का अनुमोदनरूपी आधार

इस आलोचना में एक गम्भीर तर्क-दोष है। हरएक राज्य के विधान के पीछे जनता के अनुमोदन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का अनुमोदन यदि हो तो कानून का अमल करने के लिए दंड की शरण नहीं लेनी पड़ती। इसलिए शासन को जनता का स्वयंप्रेरित समर्थन और सहयोग प्राप्त करा देना हरएक लोक-निष्ठ कार्यकर्ता का परम कर्तव्य है। जनता का स्वयंप्रेरित प्रयत्न प्रशासन को शक्ति देता है और उसकी नींव को दृढ़ करता है। विनोबा का उपक्रम इसी प्रकार का है।

मानवोचित क्रांति

सारे देश में सामन्तशाही और सरमायादारी का धीरे-धीरे अन्त करने के लिए धारा-सभाओं में कानून पेश किये गये। उनका घोर विरोध हुआ, उनके रास्ते में अड़ंगे डाले गये और अदालत में उनकी वैधानिकता का प्रश्न उपस्थित किया गया। इस विरोध-वृत्ति का निराकरण विनोबा अपने

ढंग से करना चाहते हैं। वे सम्पत्तिमानों को यह समझाना चाहते हैं कि सम्पत्ति के संविभाजन में यदि सम्पत्तिमान् सहयोग देंगे तो मानवता की बलि दिये बिना ही क्रान्ति होगी। सशस्त्र और हिंसक क्रान्ति या सम्पत्ति का बलपूर्वक अपहरण करने से दोनों पक्षों में कटुता पैदा होती है। संविभाग तो होगा, लेकिन अन्तःकरण में गहरे घाव रह जायेंगे। इसमें भयानक सांस्कृतिक हानि होगी। इस अनर्थ से मानवता को बचाने का संकल्प विनोबा ने किया है। हो सकता है कि उनकी शक्ति परिमित साबित हो। लेकिन साक्षात् भगवान् बोल चुके हैं कि 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

छोटे-बड़े भूपतियों की शृंखला

सार्वभौम भूपति सम्राट् कहलाता था, एक राष्ट्र का भूपति राजा कहलाता था और फुटकर भूपति जमींदार तथा सामन्त कहलाते थे। इस प्रकार एक तरफ छोटे-बड़े भूपतियों की परम्परा थी और दूसरी तरफ जमीन जोतनेवाले छोटे-बड़े भू-दासों की श्रेणी थी। आज जो भू-दास हैं, या जो अपने परिश्रम से जमीन जोतते हैं, वे भी भूपति बनना चाहते हैं। पहले छोटे-बड़े भूपति थे, अब सभी समान आकार के भूपति बनना चाहते हैं। किन्तु बनना चाहते हैं भूपति ही।

भावी समाज भूपतियों का नहीं, निर्माताओं का

विनोबा समाज में यह संकल्प जाग्रत करना चाहते हैं कि भविष्य में समाज भूपतियों का नहीं, भू-माता के पुत्रों का होगा। मालिकों का नहीं, उत्पादकों का होगा। सृष्टि का धन-धान्य खा-खाकर खत्म करनेवालों का नहीं, सृष्टि की समृद्धि और उत्पादन-शक्ति बढ़ानेवालों का होगा।

शास्त्रपूत अनुभवसिद्ध प्रयोग

इसके लिए दो तरह की भावनाओं का विकास करना होगा। सम्पत्तिधारियों में आत्म विसर्जन की भावना पैदा करनी होगी और छोटे-छोटे भूस्वामी किसानों में 'ट्रस्टीशिप' की भावना का विकास करना होगा।

अहिंसक क्रान्ति की यही विधि है। विनोबा उसके विज्ञाता और अनुज्ञाता हैं। उनका प्रयोग शास्त्रपूत और अनुभवसिद्ध है। वह अवश्य कल्याणकारी सिद्ध होगा। इस देश के सभी आर्थिक स्वतन्त्रतावादी व्यक्तियों को इस महान् उपक्रम में उत्साह और लगन के साथ सहयोग देना चाहिए।

सोने का नहीं, मिट्टी का निरख

विनोबा के प्रयोग की एक अपूर्व विशेषता यह है कि वे सोने की जगह मिट्टी का निरख बढ़ाना चाहते हैं, इसलिए वे किसीसे पैसा नहीं लेते। सिर्फ मिट्टी माँगते हैं। धरती माता के वे अनन्य उपासक हैं।

मिट्टी में सृष्टि का वैभव

श्रीकृष्ण ने जब मिट्टी फाँकी तो यशोदा ने उन्हें डाँटा। "मैंने मिट्टी नहीं खायी", यह दिखाने के लिए श्रीकृष्ण ने अपना मुँह बाकर दिखाया तो यशोदा ने उस छोटे-से मुखारविन्द में विश्वरूप का सारा वैभव देखा। "क्वचिन् मृत्स्नाशित्वम्, क्वचिदपि च वैकुंठविभवः।" विनोबा के इस साधारण-से प्रयोग में ऐसा ही इंगित सन्निहित है।

संसार में भूपति भूमि का संग्रह करते हैं, नृपति जन-संग्रह करते हैं और धनपति धन-संग्रह करते हैं। किन्तु मानवीय क्रान्ति का यह आधुनिक अग्रदूत केवल स्नेह-संग्रह करके धरती का बोझ हलका कर रहा है।

: २ :

भूदान-यज्ञ का बीजगणित

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन का विचार आर्थिक संयोजन की दृष्टि से कई धुरंधर अर्थशास्त्रियों ने और राज्य-नेताओं ने भी किया है। आर्थिक दृष्टि से हिसाब करना आवश्यक और उपयुक्त भी है। विनोबा के दो सूत्र प्रसिद्ध हैं : वे कहा करते हैं कि परमात्मा के बाद मेरा विश्वास गणित में है। व यह भी कहा करते हैं कि परमार्थ उत्कृष्ट हिसाब का नाम है। अर्थात् विनोबा गणित की दृष्टि से और हिसाब की दृष्टि से भी अपनी सारी योजनाओं का बड़ी सावधानी से विचार कर लेते हैं। लेकिन उनके इस भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में अंकगणित की अपेक्षा बीजगणित की प्रक्रिया अधिक है। अंकगणित का सारा दारोमदार आँकड़ों और रकमों पर होता है। बीजगणित में आँकड़ों की जगह 'संकेत' (सिंबल्स) होते हैं। भूदान-यज्ञ में 'दान' और 'यज्ञ' ये दोनों शब्द सांकेतिक हैं।

'दान' शब्द का सांकेतिक अर्थ

'दान' शब्द संपत्ति के समान वितरण का संकेत है। जिसने संग्रह कर लिया हो, वह उस संग्रह के विभाजन के लिए दान करे। जब तक सम्पत्ति का समान वितरण न हो, या न्यायोचित वितरण न हो, तब तक उसका दान परिपूर्ण नहीं होगा।

समान वितरण और न्यायोचित वितरण

हमने समान वितरण और न्यायोचित वितरण में भेद किया है, क्योंकि मनुष्यों की तथा कुटुम्बों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। आवश्यकतानुरूप वितरण को हम न्यायोचित वितरण कहेंगे। अंकगणित के हिसाब से वितरण जेलखानों में होता है। हरएक कैदी को छः-छः रोटियाँ मिलती हैं। जो पाँच खाये उसकी भी पेशी होती है और जो सातवीं माँगे,

उसकी भी पेची होती है। साधारण गुणाकार या मोटा हिसाब सुविधा-जनक भले ही हो, परन्तु वह हमेशा न्यायोचित नहीं होता। हम संग्रह का विभाजन इसीलिए तो चाहते हैं न, कि संग्रह अन्यायियुक्त है? हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम विषमता का निराकरण करना चाहते हैं, न कि विविधता का या विशिष्टता का।

दान-वृत्ति की अपार महिमा

मतलब यह कि दान में सम्पत्ति के संविभाग (सम्यक् विभाजन) का संकेत है। जो सम्पत्तिमान् हैं, उन्हें संग्रह के प्रायश्चित्त के रूप में दान करना चाहिए। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनकी सम्पत्ति का परिहरण (ऐक्स्प्रोप्रिएशन) नहीं करना पड़ेगा। सम्पत्ति को मर्यादित करनेवाले जो कानून बनेंगे, उनके साथ वे भी सहमत रहेंगे। दान में प्रतिमूल्य की या मुआवजे की भावना के लिए गुंजाइश ही नहीं। जो दान देता है, वह दान की वस्तु के साथ-साथ दान की पूर्ति के लिए ऊपर से और दक्षिणा भी दे देता है। जो पुराणमतवादी लोग ब्राह्मण को दान में गाय, मकान या अन्य कोई वस्तु देते हैं, वे उस दान की परिपूर्ति के लिए दक्षिणा भी देते हैं। दान में ममत्व के त्याग के साथ-साथ प्रायश्चित्त की भी भावना है। संग्रहशील व्यक्ति यदि अपनी मर्जी से सम्पत्ति के समविभाजन का आरम्भ कर देते हैं तो उनकी सम्पत्ति के साथ-साथ उनकी प्रतिष्ठा और हिम्मत भी नहीं जायगी। अमीरी को नष्ट करके अमीरों की इज्जत और हिम्मत बचा लेने का यह अनोखा तरीका है। यह अमीरों और गरीबों की इंसानियत बढ़ाता है।

यज्ञ में आत्मोत्सर्ग है

'यज्ञ' शब्द में स्वामित्व के त्याग का संकेत है। हम समाज में बड़ी मालकियत की जगह छोटी मालकियत कायम करना नहीं चाहते। मालकियत की वृत्ति और आकांक्षा का ही अन्त कर देना चाहते हैं। इसलिए विनोबा केवल बड़े-बड़े जमींदारों से ही जमीन नहीं माँगते, वे

एक एकड़ और आध एकड़वाले छोटे-छोटे किसानों से भी भूदान ले लेते हैं। कोई आध एकड़वाला किसान अपनी कुल जमीन दे दे तो उसे भी ले लेते हैं। क्योंकि गरीब का दान यज्ञरूप होता है। हजार एकड़वाला अगर नौ सौ एकड़ भी दे दे, तो भी वह आपको अपना पेट काटकर नहीं देता। अपनी जीविका का उत्सर्ग नहीं करता, वह केवल अपने वैभव का अधिकांश आपको दे देता है। लेकिन अगर पाँच एकड़वाला ढाई एकड़ दे देता है, तो वह अपना आधा राज ही नहीं, आधा पेट, आपको दे देता है। इसलिए उसका दान यज्ञरूप है। वह अपनी माल-कियत की भावना की ही आहुति दे देता है।

भूमाता की पुकार

हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं वह समाज मालिकों का नहीं, उत्पादकों का होगा। अब इस वसुधा पर कोई भूपति या नरपति नहीं होगा, सभी मानव भूमि-पुत्र होंगे। यह भूमि मालिकों से और पतियों से तंग आ गयी है। गाय का रूप धारण करके मानो वह भगवान् से कह रही है कि मुझे अब इस पाप का भार हो रहा है। मेरे सभी पुत्र मेरे स्वामी बनना चाहते हैं। भगवान् ने उसे आश्वासन दे दिया है कि जिस प्रकार अब राज्य-सत्ता किसी राजा की या राजवंश की नहीं रह गयी है, उसी प्रकार अब यह धरती भी किसी मालिक की नहीं रहेगी। धरती से जो दूब निकली, वही भगवान् का संकेत बनकर अब आकाश में गूँजने लगी है।

मालकियत का निराकरण

सेंट सायमन के शब्द थे, "भविष्य का संसार स्वामियों (प्रोप्राइटर्स) का नहीं, उत्पादकों (प्रोड्यूसर्स) का होगा।" गांधी ने कहा था, "सभी सम्पत्तिधारी अपने आपको सम्पत्ति के न्यास-रक्षक (ट्रस्टी) मानेंगे। जो बड़े सम्पत्तिधारी होंगे, वे अपनी सम्पत्ति का विसर्जन करेंगे और जिनके पास थोड़ी-सी ही सम्पत्ति होगी, वे भी अपने आपको उसके मालिक नहीं समझेंगे।"

यज्ञ की व्यापकता

किसीने विनोबा से कहा कि "मुट्ठी-भर बड़े-बड़े मालिकों की जगह दुनिया में छोटे-छोटे मालिकों का जाल आप फैला देंगे, तो आगे चलकर सहयोग के तत्त्व की स्थापना करना मुश्किल हो जायगा। ये सारे छोटे-छोटे मालिक अपनी मालकियत की रक्षा के लिए लड़ने खड़े हो जायँगे।" इसलिए विनोबा ने अपने भूदान-आन्दोलन में 'यज्ञ' का भी समावेश कर लिया है। यज्ञ में छोटे-बड़े सभी अपनी-अपनी इच्छा और शक्ति के अनुरूप हविर्भाग लाते हैं।

नमक-सत्याग्रह का दृष्टान्त

सांकेतिक आन्दोलन में पुण्य-भावना का महत्त्व बहुत अधिक होता है। पुण्य-भावना सारे वायु-मण्डल को सुरभित कर देती है। गांधीजी ने चुटकी भर नमक बनाया। उससे यहाँ के कोई समुद्र तो नहीं सूख गये और न लवणागार ही खाली हुए। परन्तु उस छोटे-से संकेत ने सारे वायुमण्डल को अभिमंत्रित कर दिया। विनोवा का यह आन्दोलन विधायक संविभाग की भावना से सारे वातावरण को सुगंधित कर देगा।

बिना नैवेद्य के प्रसाद कहाँ?

एक बात और। जब से राजसत्ता का अन्त हुआ और जनतन्त्र कायम हुआ तब से सत्ता और अधिकार के हिस्से के लिए सभी अपना-अपना हाथ पसारते हैं। उसी तरह सम्पत्ति के वितरण के लिए भी हरएक अपना-अपना छोटा-बड़ा पात्र लेकर लक्ष्मी माता के मन्दिर में पहुँच गया है। माता कहती है, "कोई चढ़ौत्री और नैवेद्य लायगा, तभी तो प्रसाद बँटेगा।" लक्ष्मी के सभी छोटे-बड़े भक्त अपनी-अपनी चढ़ौत्रियाँ लेकर उसके चरणों में चढ़ायेंगे तभी उसका भंडार भरेगा। सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण की यह मानवोचित प्रक्रिया विनोबा के भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में समाविष्ट है। इसलिए हम कहते हैं कि वह क्रान्ति का अंकगणित भले ही न हो, लेकिन उसका बीजगणित अवश्य है।

: ३ :

दान-प्रक्रिया से क्रान्ति

इस यज्ञ के संबंध में कुछ मूलभूत भ्रम हैं, जिनके कारण कई अनावश्यक आक्षेप कार्यकर्ताओं के भी मन में उठते हैं। 'दान' शब्द के बारे में आम तौर पर जो आक्षेप किये जाते हैं, उनका समाधान करने की कोशिश स्वयं विनोवा ने और प्रस्तुत लेखक ने की है। फिर भी कई प्रामाणिक कार्यकर्ताओं के मन में कहीं कुछ अटका रह जाता है। इसका कारण यह है कि 'दान' शब्द के अर्थ की और उसके प्रयोग की व्याप्ति कार्यकर्ताओं की समझ में अच्छी तरह नहीं आयी है।

आर्थिक क्रान्ति

यह खयाल गलत है कि भूदान-यज्ञ में दान सिर्फ अमीरों को ही देना है। विनोवा गरीवों से भी दान माँगते हैं और धन्यतापूर्वक ले लेते हैं। वे कहते हैं कि गरीवों की क्रान्ति-सेना का निर्माण और संगठन दूसरी किसी पद्धति से नहीं हो सकता। हम गरीव आदमी की हुकूमत के साथ-साथ उसकी मालकियत भी कायम करना चाहते हैं। यही आर्थिक क्रांति की प्रक्रिया है। गरीव आदमी की मालकियत का अर्थ है उत्पादक की मालकियत। जो उत्पादक है आज उसके पास उत्पादन के औजारों के सिवा दूसरे कोई औजार नहीं हैं। इसलिए गरीव आदमी की क्रांति हथियारों के द्वारा नहीं हो सकती। गरीव गरीब है, इतना कह देने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पैसे की ताकत उसके पास नहीं है। तव सवाल यह होता है कि वगैर पैसे के और वगैर हथियारों के गरीवों की फौज किस तरह वने ?

गरीब का अपरिग्रह

भूदान-यज्ञ-आंदोलन के प्रणेता ने यह योजना की है कि गरीब आदमी अपरिग्रह के प्रयोग का आरम्भ करे। उसका परिग्रह, याने उसकी संपत्ति, इतनी थोड़ी है कि एक तरह से उसको संपत्ति कहना भी मजाक है। परन्तु उस नगण्य मालकियत से भी वह चिपका रहना चाहता है। उसे यह डर है कि इस छोटी-सी मालकियत को मैं छोड़ दूँगा तो कहीं का नहीं रहूँगा। छोटी मालकियत का नाम गरीबी है। अगर गरीब आदमी उस छोटी-सी मालकियत का विसर्जन सामुदायिक मालकियत में कर देता है, तो वह खोता कुछ नहीं और पाता सब कुछ है। इसलिए गरीब आदमी के दान के लिए 'यज्ञ' संज्ञा का प्रयोग किया गया है।

गरीबों की सेना

गरीब जब अपनी अल्प संपत्ति में से भी सार्वजनिक संपत्ति के यज्ञ में आहुति दे देता है तो वह एक गरीब और दूसरे गरीब के बीच स्नेह-बंधन का निर्माण करता है। त्याग और बलिदान के डोरे से बँधे हुए ये गरीब एक अजेय सेना का निर्माण करेंगे।

विषमता का निराकरण क्यों ?

आखिर हम अमीर और गरीब के फर्क को क्यों मिटा देना चाहते हैं ? इसीलिए न कि अमीरी और गरीबी आदमी को आदमी से अलग कर देती है ? जो तजवीज जुदाई पैदा करती है वह नापाक है। व्यवस्था ऐसी चाहिए, जो आदमी को आदमी के साथ मिलाये। सबके-सब गरीब अमीरों के द्वेष की भूमिका पर अगर इकट्ठे होते हैं, तो उनमें परस्पर स्नेह का भाव-रूप बंधन नहीं होता। अमीरों की संपत्ति छीन लेने के बाद सारे उत्पादकों को कृत्रिम बंधनों से बाँधकर रखना पड़ेगा। यह डर हमेशा रहेगा कि ये कृत्रिम बंधन कहीं ढीले न पड़ जायँ। इसलिए उन बंधनों को ज्यादा सख्त और मजबूत बनाने की ही चेष्टा निरन्तर होती रहेगी। इन बंधनों के विलीन हो जाने की कोई संभावना निकट या दूरवर्ती भविष्य में नहीं दिखाई देगी।

क्रांति का आधार

इसलिए क्रान्ति की प्रक्रिया भी ऐसी चाहिए, जिसका आधार भाव-रूप एकता हो। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में यह विशेषता है। गरीब अपनी-अपनी अल्प सम्पत्ति समर्पित करके एक-दूसरे के साथ स्नेह-बंधन से बँध जाते हैं। गरीबों का इस प्रकार का भाईचारा कायम हो जाने के बाद मुट्ठी भर अमीर अलग नहीं रह सकते। अमीरी की यह शर्त है कि बहुत-से गरीबों का परिश्रम खरीदने का अवसर हमेशा बना रहे। जहाँ यह अवसर खत्म हुआ, अमीरी की नींव ही ढह जाती है।

सत्ता का नशा

अब एक इतना ही अंतिम आक्षेप रह जाता है कि मनुष्य-समाज का इतना भरोसा करना अव्यावहारिक है। इस आक्षेप के जवाब में बहुत अदब के साथ एक परिप्रश्न किया जा सकता है। अगर संपत्ति मनुष्य की वृत्ति को बिगाड़कर उसमें जहर पैदा कर देती है, तो क्या सत्ता का हलाहल संपत्ति के गरल से कम भयानक होता है? गरीबों को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए जो मुट्ठी भर आदमी अपने हाथों में शस्त्र-प्रयोग से सत्ता लेंगे, वे क्या फरिश्ते और देवता होंगे? क्या उनमें सत्ता का उन्माद पैदा नहीं होगा?

मनुष्य पर भरोसा

मतलब यह कि मनुष्य की शुभ प्रवृत्ति पर कहीं-न-कहीं जाकर विश्वास रखना ही पड़ता है। मनुष्य में अविश्वास के आधार पर मानवता के उत्कर्ष की पोषक कोई क्रान्ति नहीं हो सकती। जो लोग साधनशुद्धि का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करते हैं उनकी बात में तर्कसंगति तो है ही, परन्तु उससे कहीं अधिक वास्तविकता है। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में एक दानी और दूसरा भिखारी ऐसी कल्पना नहीं है। यह दान उत्सर्ग और समर्पण की प्रक्रिया का आरम्भ है। जो अमीर दान देता है वह भी क्रान्ति की सेना में दर्ज हो जाता है। जो गरीब उत्सर्ग करता है, वह तो क्रान्ति की वर्दी पहनकर उसका अग्रदूत हो बन जाता है।

क्रांति की सेना

रामराज्य की फौज जितनी अनोखी थी, उतनी ही विक्रमशाली थी। विनोबा के 'ग्रामराज्य' की यह सेना भी अपने ढंग की अनूठी और पराक्रमी होगी।

'दान' शब्द में बहुत-से क्रान्तिवादियों को भी कृपा, उपकार और कृतज्ञता की बू आती है। उनका कहना है कि दान की विधि में जो प्रतिग्रह करनेवाला होता है, वह कृतज्ञता के बोझ से दब जाता है और देनेवाला अपने आपको परोपकारी तथा दानवीर समझने लगता है। इसलिए 'दान' का यह मार्ग गरीब आदमी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचानेवाला है और 'अमीर' का गर्व बढ़ानेवाला है।

परंपरागत 'दान'-विचार

परंपरागत 'दान' की कल्पना में और विनोबा की दान की कल्पना में मूलभूत तथा वास्तविक भेद है। परम्परागत दान में भी संग्रह के प्रायश्चित्त की कल्पना तो थी ही। 'परिग्रह चोरी है और दान उसका प्रायश्चित्त है'। यह भावना तो परंपरागत दान के मूल में भी रही है। 'दान' और 'भिक्षा' में हमेशा ही जमीन-आसमान का फर्क रहा है। भिक्षा के सिद्धान्त की मीमांसा करना यहाँ अप्रस्तुत होगा, फिर भी इतना कह देना चाहिए कि संन्यासी के लिए विहित भिक्षा-चर्या दान के प्रतिग्रह से भी अधिक उदात्त तथा उन्नतिकारक मानी जाती थी। हम आजकल जिसे 'भीख' कहते हैं और जो मुँहताज, लाचार तथा अपील भिखारियों को दी जाती है, वह दान में कभी शुमार नहीं की जाती थी। इस्लाम में भी 'जकात' और 'खैरात' कभी समकक्ष नहीं मानी गयीं। आजकल भी समाज में भीख तथा दान में और जकात तथा खैरात में लोग फर्क करते हैं।

दान ने दब्बू नहीं बनाया

जिन लोगों का यह खयाल है कि दान लेनेवाला कृतज्ञता के बोझ के नीचे दब जाता है, उन्होंने समाज में दान के परिणामों का गहराई और

बारीकी के साथ अध्ययन करने की परवाह नहीं की है। हिन्दू समाज में ब्राह्मण को दान दिया जाता था। हम यह जानते हैं कि दान लेने से ब्राह्मण जाति दब्बू नहीं बनी। वह दान ले लेती थी, उसकी परिपूर्ति के लिए दक्षिणा भी ले लेती थी और यजमान की जरा-सी गलती पर क्रोध करके शाप देने के लिए भी उद्यत हो जाती थी। दान देनेवाला नम्र होकर दान देता था, संकोच के साथ दान देता था और शोभा तथा शुभ भावना के साथ दान देता था। उसे संकोच यह होता था कि जो-कुछ मैं दे रहा हूँ, वह बहुत कम है और उसका मूल्य भी बहुत अल्प है। इसलिए वह डरते-डरते दान देता था। छान्दोग्योपनिषद् में "श्रिया देयम्, भिया देयम्, संविदा देयम्," ऐसा आदेश है। जो कुछ देना है, उसमें व्यवहार की सुन्दरता (ग्रेस), अपने दान की अल्पता का भान और लेनेवाले की प्रतिष्ठा का खयाल अवश्य होना चाहिए। दान में 'श्री' वह भावना है, जिसे हम अंग्रेजी में 'ग्रेस' कहते हैं। दाता के लिए इतनी कड़ी मर्यादाएँ थीं और लेनेवाले के लिए भी कुछ मर्यादाएँ बतलाई गयी थीं। फिर भी हमने देखा कि ब्राह्मण दब्बू बनने के बदले घमंडी, उद्दंड और आत्म-संभावित बन गया। उसका पतन हुआ। उसने उपयोगी वस्तुओं का तथा द्रव्य का दान लिया, इसलिए वह परोपजीवी बन गया। जहाँ उसने जमीन का दान लिया, वहाँ प्रत्यक्ष उत्पादन का काम स्वयं नहीं किया। इन दोषों के कारण धीरे-धीरे समाज में से उसकी प्रतिष्ठा नष्ट होती चली गयी जो सर्वथा उचित ही हुआ।

विनोबा का 'दान'-विचार

परन्तु विनोबा के इस दान में न अन्न-दान का समावेश है और न वस्तु-दान का; किन्तु उत्पादन के साधन और उत्पादन के उपकरणों का दान है। यदि हम थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि प्राचीन दान के सिद्धान्त के मूल में जितनी भावनाएँ थीं, वे सब इस दान के पीछे भी हैं, तो भी उस दान में और इस दान में उत्तर-दक्षिण ध्रुव का अन्तर

पड़ जाता है। क्योंकि यह दान उत्पादन के साधनों का है, उपयोग की वस्तुओं का नहीं। इसमें परंपरागत दान के सभी गुण तो हैं, लेकिन उसका दोष एक भी नहीं है।

क्रांति की दिशा में

परम्परागत दान में और इस दान में और भी एक मूलगामी अंतर है। परम्परागत दान व्यक्तिगत पुण्य-प्राप्ति के लिए और ऐश्वर्य तथा वैभव की आकांक्षा से किया जाता था। इस लोक में हम जो दान ब्राह्मण को या दूसरे सत्पात्र व्यक्ति को देते हैं, उसके बदले हमें स्वर्ग-लोक में या दूसरे जन्म में प्रभूत सम्पत्ति का लाभ होगा, ऐसी श्रद्धा से वह दान दिया जाता था। इस लोक में एक गाय का दान कर दिया तो स्वर्ग-लोक में साक्षात् कामधेनु के अक्षय पुष्टि-दायी दूध का लाभ हमें होता था। यहाँ थोड़ी-सी जमीन का दान कर दिया तो अगले जन्म में सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त होने की आशा रहती थी। परन्तु विनोबा की दान-प्रक्रिया अधिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए नहीं है, वरन् प्राप्त सम्पत्ति के शीघ्रातिशीघ्र विसर्जन के लिए है। इसलिए विनोबा की दान-प्रक्रिया आर्थिक क्रांति के मार्ग पर बहुत बड़ा कदम है।

एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि "हम जिस वस्तु का दान लेते हैं, उस वस्तु पर दाता का स्वामित्व स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि आज जिससे हम दान लेते हैं, वह उस वस्तु का स्वामी नहीं बल्कि अपहर्ता है। अपहर्ता का स्वामित्व हम क्यों मंजूर करें?"

क्रांति का मूल तत्त्व

इस आक्षेप के पीछे जो गृहीत कृत्य है, उसको हम मान लेते हैं। तो भी सवाल यह होता है कि अगर कोई हमारी वस्तु अपनी मर्जी से लौटा दे तो क्या उतने से ही वह उस वस्तु का मालिक बन जाता है? मान लीजिए कि किसीने हमारी कोई चीज छीन ली। हम उसे समझा-बुझाकर अपनी चीज उससे वापस लेने की कोशिश करते हैं। उसे डराते-

धमकाते नहीं, परन्तु ऐसी हरकत के दुष्परिणामों का वास्तविक चित्र उसके सामने खींच देते हैं और उससे झगड़ा टालने का स्नेहपूर्वक अनुरोध करते हैं। वह मान जाता है और हमारी चीज लौटा देता है। तो इसमें हर्ज कौनसा है? क्या क्रान्ति के लिए छीना-झपटी और जोर-जबरदस्ती अनिवार्य ही है? जो ऐसा मानते हैं कि बगैर हिंसा के क्रांति हो ही नहीं सकती, वे हिंसा को अनिवार्य ही नहीं, बल्कि आवश्यक मानते हैं। इसका तो यह मतलब हुआ कि जितनी हिंसा अधिक होगी, उतनी क्रांति भी अधिक सफल होगी। परन्तु यह अपसिद्धान्त है। जो क्रांतिवादी अहिंसा का आग्रह नहीं रखते, वे भी इस सिद्धान्त को हरगिज नहीं मानेंगे। हमारी ही चीज अगर कोई भलेमानस की तरह सभ्यता और शोभा के साथ लौटा देता है, तो उसमें उसका श्रेय है और हमारी प्रतिष्ठा है। क्रांतिवादियों में भी कुछ परम्परा के गुलाम और जीर्णमतवादी होते हैं। जो यह मानते हैं कि बगैर लड़ाई-झगड़े के परस्पर सम्मति से जो सामाजिक स्थित्यंतर होता है वह क्रांति नहीं है, वे दकियानूसी हैं। क्रांति में महत्त्व सामाजिक परिवर्तन का है, न कि संघर्ष और रक्तपात का।

इस देश की रियासतों के राजाओं ने अपनी-अपनी रियासतें बगैर लड़ाई-झगड़े के दे दीं। तो क्या इससे देश की हानि हुई? क्या हमको उन्हें यह कहना चाहिए था कि जब तक हम तुम्हारी रियासतें तुमसे छीनकर नहीं लेंगे, तब तक हमारा उद्देश्य सफल नहीं होगा? हमने ये रियासतें उनसे इनाम या भिक्षा के रूप में नहीं ली हैं। उन्होंने युग की आकांक्षा तथा हमारी सामर्थ्य को पहचाना और अपना कब्जा छोड़ दिया।

'दान' ही 'सम्प्रदान'

जो संपत्तिधारी हैं, उनको हम संपत्ति के मालिक नहीं मानते। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि संपत्ति आज उनके कब्जे में है। उन्हें हम कब्जा छोड़ देने को कहते हैं। अगर वे समझाने-बुझाने और विनय-अनुनय

से ही मान लेते हैं, तो उतने से क्रांति में दोष कहाँ पैदा होता है ? अगर आँगन में लगे हुए अकौए के पेड़ से शहद मिल सकता हो तो पहाड़ छानने की जिद करने में कौन-सी समझदारी है ? क्रांतिकारी को सम्पत्ति के परिहरण से मतलब है या उसके विसर्जन से ? परिहरण के बदले स्वेच्छा-प्रेरित समर्पण और उत्सर्ग से यदि संपत्ति का विसर्जन हो जाता है तो क्रांति में कौन-सी त्रुटि रह जाती है ? ऐसी स्थिति में परिहरण का आग्रह रखना वैचारिक विभ्रम का द्योतक है। हाँ, हम अपनी असमर्थता और दुर्बलता के कारण अगर दान के मार्ग की शरण लेते हैं तो हमारी प्रक्रिया क्रांति के प्रतिकूल होगी। परन्तु यदि हमारी शक्ति और कालात्मा के पद-चिह्नों को पहचानकर सम्पत्तिधारी अपनी सम्पत्ति समाज के अर्पण कर देते हैं, तो लेनेवाला और देनेवाला, दोनों धन्य हो जाते हैं। ऐसा 'दान' केवल देने की क्रिया-मात्र है। उसमें देनेवाले की और लेनेवाले की भूमिका में कोई भेद नहीं रहता। लेनेवाले की भूमिका गौण नहीं हो जाती। दो बराबरी के आदमी जब एक-दूसरे को उपयोग की कोई वस्तु देते हैं तो दोनों कृतज्ञ होते हैं और एक-दूसरे को धन्यवाद देते हैं। इस प्रकार विनोबा की यह दान-दीक्षा उभय पक्षों को धन्य-धन्य करनेवाली है। यह 'दान' वास्तव में 'सम्प्रदान' ही है।

पुराणप्रिय क्रान्तिवादियों की चुनौती

इस प्रकार की क्रांति में एक अन्यतम विशेषता होती है। वह यह कि इसमें प्रतिक्रांति की आशंका नहीं रह जाती। जब हम कानून से सम्पत्ति का परिहरण करते हैं तो सम्पत्तिमान् के मन में एक कसक रह जाती है। उसका दिल खट्टा हो जाता है और वह प्रतिशोध के लिए तड़पता रहता है। अगर सम्भव हो तो अपनी खोई हुई सम्पत्ति वापस पाने की कोशिश में भी रहता है। इसलिए वह 'हाईकोर्ट' में जाकर यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि उसकी सम्पत्ति अवैध रीति से छीन ली गयी है। अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए वह संविधान की दुहाई देने लगता है। 'सुप्रीम-

कोर्ट' का निर्णय अगर उसके विरुद्ध हुआ तो फिर वह लोगों के 'वोट' जुटाकर येन-केन-प्रकारेण कानून रद्द करवाने का या उसे सत्त्व-हीन कर देनेवाले संशोधन कराने का प्रयास शुरू कर देता है। इस तरह क्रांति के वाद का बहुत-सा समय अदालतबाजी और कानूनबाजी के द्वारा प्रति-क्रांति का प्रतिकार करने में नष्ट हो जाता है। जहाँ सशस्त्र क्रांति होती है, वहाँ भी हारा हुआ पक्ष बदला लेने की तैयारी में लग जाता है, वह शस्त्रास्त्र तथा फौज का संग्रह करने की फिराक में रहता है। क्रांतिकारी पक्ष का बहुत-सा समय प्रतिक्रांतिवादियों को खोज-खोजकर उन्हें खत्म करने के उद्योग में ही बीत जाता है। जिसमें प्रतिक्रांति की आशंका बिलकुल न रहे या अल्पतम रहे ऐसा अमोघ क्रांति-तंत्र दुनिया के परम्परानुगामी क्रांतिवादी अब तक नहीं खोज पाये हैं। विनोबा ने इस आंदोलन के द्वारा प्रतिक्रांति की आशंका से सुरक्षित एक नये क्रांतितंत्र का उपक्रम किया है। क्या इसमें क्रांतिवादियों की पुराण-प्रियता को चुनौती नहीं है ?

दान का प्रसंग नहीं; प्रक्रिया

देश में सम्पत्तिमानों के दो वर्ग हैं। एक बड़े मालिक और दूसरे छोटे मालिक। जो बड़े मालिक हैं, उन्हें हम अमीर कहते हैं और जो छोटे-छोटे मालिक हैं, उनको हम गरीबों में शुमार करते हैं। लेकिन वे भी उत्पादन के साधनों के मालिक तो हैं ही। बड़े मालिकों और छोटे मालिकों में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि बड़े मालिक मुनाफाखोरी करते हैं और दूसरों के श्रम से लाभ उठाकर अपनी सम्पत्ति बढ़ाते हैं। इसलिए बड़े मालिकों के लिए दान की प्रक्रिया है। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि भूदान-यज्ञ का यह आंदोलन दान का एक 'प्रसंग' नहीं है, वह दान की एक 'प्रक्रिया' है। दान का मुहूर्त आज ही है, लेकिन दान का सिलसिला तब तक जारी रहेगा, जब तक कि वे अपनी पूरी सम्पत्ति का विसर्जन नहीं कर चुकेंगे।

दान की इस प्रक्रिया की अवधि भी बहुत अल्प है। पुराने जमाने में

राजाओं के राज-महलों में दान की अवधि 'सवा पहर' की होती थी। 'सवा पहर' उपलक्षणात्मक है। आशय यह है कि जितनी जल्दी सम्पत्ति का विसर्जन सम्पन्न होगा, उतनी जल्दी हम अपने देश को और संसार को भावी अनर्थ से बचा सकेंगे। सम्पत्ति का यह विसर्जन विनयपूर्वक, मनःपूर्वक और बुद्धिपूर्वक होना चाहिए। तभी उसमें से हमारे उद्दिष्ट परिणाम निकलेंगे। उसमें किसी प्रकार का संदेह वा अश्रद्धा नहीं होनी चाहिए। माँगनेवाले को टाल देने की नीयत से जो दान दिया जायगा, उससे दूना अनर्थ होगा। देनेवाले की अप्रतिष्ठा होगी और लेनेवाले का मनस्ताप शांत नहीं होगा, बल्कि बढ़ेगा। सामाजिक प्रशम (प्रशान्ति) का जो वातावरण विनोबा इस देश में बनाना चाहते हैं, उसमें बाधा पहुँचेगी और सार्वत्रिक हानि होगी। इसलिए सम्पत्तिमानों से सविनय अनुरोध है कि वे अपनी सम्पत्ति का विसर्जन शान्तिमय क्रान्ति सिद्ध करने की भावना से करें।

जो बोया सो पाया

धार्मिक क्षेत्र में जो दान किया जाता है, उसके विषय में हमारा यह अनुभव रहा है कि यजमान अल्प-से-अल्प तथा निकृष्ट-से-निकृष्ट वस्तु का दान करता है और उसके बदले में उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट फल चाहता है। रेज़गारी में आये हुए खोटे सिक्के यथाशक्ति द्रव्य-दान के नाम पर भगवान् के चरणों में वह चढ़ाता है और उसके बदले में खरा पुण्य चाहता है। भगवान् बेचारे अदृष्ट और अदृश्य हैं, इसलिए उस क्षेत्र में ऐसी धाँधली चल जाती है। लेकिन इस दुनिया में सौदा नक़द है। यहाँ, 'बवा सो लुनिय, लहिय जो दीन्हा'—जो बोया सो काटो, जो दिया सो पाओ—का प्रत्यय बहुत जल्दी आता है।

सहयोगी उत्पादन की भूमिका

गरीबों में भी दो श्रेणियाँ हैं। एक तो वे, जो कि छोटे-छोटे मालिक हैं; और दूसरे वे, जो केवल मजदूरी पर जीते हैं। हम पहले सम्पत्ति का विसर्जन करा लेना चाहते हैं, इसलिए दान की प्रक्रिया से आरंभ करते

हैं। संपत्ति के विसर्जन का उद्देश्य मुनाफे की प्रेरणा का अन्त कर देना है। मालकियत से मुनाफे की प्रेरणा निकल जाने पर उसका डंक ही कट जाता है। मुनाफे की प्रेरणा को खत्म करने के बाद मालकियत को ही खत्म करना है। उत्पादन जब मुनाफे के बदले जरूरत के लिए होने लगेगा, तब छोटी-छोटी मालकियतों को बनाये रखने की प्रेरणा अपने-आप क्षीण हो जायगी। जो गरीब छोटे-छोटे मालिक हैं, उन पर यह प्रकट हो जायगा कि उनकी मालकियत उनकी गुजर-बसर के लिए काफी नहीं है। तब उनमें अपनी-अपनी मालकियतों को एक-दूसरे के साथ मिला देने की प्रेरणा पैदा होगी और इस प्रकार सहयोगी उत्पादन की भूमिका तैयार होगी।

यज्ञ की प्रक्रिया

हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गरीबों में आपस के स्वार्थों का संघर्ष न हो। एक गरीब के पास तीन एकड़ जमीन है, दूसरे के पास एक एकड़ है और तीसरे के पास शून्य एकड़ है। इनमें किसी की भी गुजर नहीं होती, तब वे आपस में बैठकर यह तय करते हैं कि यह सारी जमीन हम सबकी है। इस तरह से वे अपनी-अपनी मालकियतों को एक-दूसरे के साथ मिला लेते हैं। इसके लिए उन्हें अपनी मालकियत छोड़ ही देनी पड़ती है। इसका नाम 'यज्ञ' की प्रक्रिया है।

हम बड़ी-बड़ी मालकियतों को बिखेरकर सबको मालिक बना देना चाहते हैं। यह दान की प्रक्रिया है। लेकिन हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि बड़ी-बड़ी मालकियतों की जगह छोटी-छोटी मालकियतों का एक जाल बिछा दें। मालकियतों को बिखेरना हमारा पहला कदम है। वह हमारा मुकाम नहीं है। वह हमारी छत्री है, छप्पर नहीं है। हम मालकियत को ही खत्म कर देना चाहते हैं। इसलिए छोटे-छोटे मालिकों से अपनी-अपनी मालकियतें जोड़ लेने के लिए कहते हैं। बड़ी मालकियतों को तोड़ने के लिए 'दान' है और छोटी मालकियतों को जोड़ने के लिए 'यज्ञ' है।

अन्यतम क्रांति-तन्त्र

इस क्रांति-तन्त्र की यह अन्यतम विशेषता है कि इसमें व्यक्तियों के कलह के बिना वर्ग-निराकरण का निश्चय है, प्रतिक्रांति के प्रतिबंध की योजना है और किसान-किसान तथा किसान-मजदूर के अन्तर्गत संघर्ष को टालने की विवेक-युक्त व्यवस्था है। यह आन्दोलन एक अपूर्व प्रक्रिया के द्वारा क्रांति को सम्पन्न करने का एक अमोघ साधन और निश्चित आश्वासन है।

: ४ :

वर्ग-निराकरण की प्रक्रिया

मैं ऐसा मानता हूँ कि हमारे देश में भी वर्ग हैं। हरएक वर्ग के व्यक्ति बदलते रहते हैं और बदल सकते हैं, इसलिए यह कहना सयुक्तिक नहीं होगा कि वर्ग हैं ही नहीं। जिस समूह के व्यक्ति बदलते हैं, उसी को 'वर्ग' कहना चाहिए। यदि ऐसा न होता, तो वह समूह 'जाति' कहलाता। जाति जन्म पर निर्भर है। इसी कारण जाति-निराकरण तबतक असम्भव है, जबतक हम जन्म की ही परिस्थिति में परिवर्तन नहीं करते, याने सजातीय विवाह निषिद्ध नहीं करार देते। वर्ग के विषय में यह बात नहीं है। आज का अमीर कल गरीब बन जाता है, आज का गरीब कल अमीर बन जाता है। इसमें कर्तृत्व के लिए अवसर है। लेकिन वह समाज-व्यवस्था के कारण सीमित है। वास्तव में सबको समान अवसर नहीं मिलता। जो अमीर की कोख से पैदा होता है, उसे सामाजिक प्रतिष्ठा तथा कौटुम्बिक सुख-सुविधा बिना प्रयत्न के ही उपलब्ध हो जाती हैं। सम्पत्ति और दारिद्र्य व्यक्ति को विरासत में प्राप्त होते हैं।

वर्ग-निराकरण के बिना साम्ययोग असंभव

समाज में अनुत्पादक व्यवसाय करनेवालों की इज्जत बढ़ती है। परम्परागत परिस्थिति से उनको लाभ मिलता है। समाज-सेवा भी व्यवसाय बन जाता है। सेवा तथा संस्कृति सौदे की चीजें बन जाती हैं। अमीरी और गरीबी व्यक्तिगत पुरुषार्थ पर बहुत कम परिमाण में निर्भर होती है। वह मुख्य रूप से उपलब्ध साधन और सुयोग पर निर्भर होती है। ये साधन और सुयोग, विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति के कारण एक वर्गविशेष के व्यक्तियों को ही उपलब्ध होते हैं। विशिष्ट आर्थिक व्यवस्था

के कारण परिस्थिति की जो विरासत हरएक व्यक्ति को मिलती है, वही आर्थिक विषमता की जड़ है। जो व्यवसाय व्यक्ति के अथवा विशिष्ट समुदाय के मुनाफे के लिए किया जाता है, उसे पापमूलक समझना चाहिए। यदि अनुत्पादक व्यवसाय व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता हो, तो उसे अधिक बड़ा पाप मानना चाहिए। ये व्यवसाय विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति पर अवलम्बित हैं। इसलिए जो लोग ये व्यवसाय करते हैं, उनका एक वर्ग बन जाता है। अतएव वर्ग-निराकरण के बिना साम्ययोग की स्थापना असंभव है।

अच्छाई और बुराई का वर्गीकरण अनर्थकारक

समझदार और मूर्ख, सज्जन और दुर्जन के वर्ग मानना न केवल अशास्त्रीय ही है, अपितु अनर्थावह भी है। अच्छाई और बुराई गुण हैं। उनका सम्बन्ध बाह्य साधनों से और व्यवसायों से कम मात्रा में है। व्यवसाय के कारण कभी-कभी समाज-विरोधी भूमिका प्राप्त होती है। उससे वृत्ति भी दूषित होती है। परन्तु व्यवसाय के कारण जो सज्जनता और दुर्जनता की भूमिका प्राप्त होती है, उसके आधार पर हमें व्यक्तियों को सज्जन या दुर्जन नहीं मानना चाहिए। कसाई का धंधा करनेवाला भी बड़े दिल का और दयालु हो सकता है। फाँसी की सजा पर अमल करनेवाले व्यक्ति निर्घृण (बेहया) भले ही हों, लेकिन उनकी गिनती दुष्टों में नहीं की जा सकती। जो अपने-आपको साधु या सज्जन मानता है, उस अहंकारी व्यक्ति के बराबर अधम और कौन है? हम जब वस्तुनिष्ठ दृष्टि से और तटस्थ भाव से देखते हैं तो कुछ व्यक्तियों की दुष्टता अल्प मात्रा में दिखाई देती है और कुछ व्यक्तियों में सज्जनता अल्प मात्रा में पायी जाती है। समाज में सज्जन और दुर्जन, मूर्ख और सुजान, उदार और कृपण व्यक्ति हैं। परन्तु सज्जनता और दुष्टता, मूर्खता और सयाँपा इत्यादि गुण बाह्य उपकरणों पर और साधनों पर अल्प मात्रा में निर्भर हैं। समाज में हम सारे नियम सज्जनता के विकास के लिए ही

बनाते हैं। इसलिए सज्जन और दुर्जन, मूर्ख और सयाने, इस तरह का वर्गीकरण करना अत्यन्त अनर्थकारक साबित होगा।

सज्जन और दुर्जन, मूर्ख और सयानों में प्रत्यक्ष व्यावहारिक स्वार्थ-विरोध निर्माण नहीं होता। सज्जन को अपना सौजन्य बढ़ाने के लिए दुर्जन की दुर्जनता से फायदा उठाने की जरूरत नहीं होती। सयाने को अपने सयाँपे के संरक्षण के लिए दूसरे की मूर्खता बनाये रखने की योजना नहीं करनी पड़ती।

आर्थिक और गुणाश्रित विषमता का निराकरण

इस प्रकार आर्थिक विषमता और गुणाश्रित विषमता में मूलभूत अन्तर है। आर्थिक विषमता विशिष्ट सामाजिक रचना, परम्परा तथा परिस्थिति पर आधार रखती है। गुणाश्रित विषमता का निराकरण आत्म-शक्ति से हो सकता है।

अमीरी प्राप्त करने के लिए भी त्याग और परिश्रम की आवश्यकता होती है। परन्तु वह त्याग और परिश्रम व्यक्तिगत लाभ, प्रतिष्ठा और स्वार्थ के हेतु किये जाते हैं। इसलिए वे समाज-विघातक सिद्ध होते हैं। यह तप आसुरी तप कहलाता है। रावण, हिरण्यकशिपु इत्यादि असुरों ने इसी प्रकार का तप किया। इसलिए प्राणिमात्र के साथ आत्म-भाव सिद्ध करके यथार्थ अमरत्व प्राप्त करने के बदले उन्होंने यह वरदान माँग लिया कि हमें किसी के हाथों मृत्यु न आये। अर्थात् उन्होंने यह मान लिया कि संसार में जितने प्राणी हैं, वे सब उनके शत्रु हैं। जो दूसरों को पैरों तले रौंदकर खुद जीना चाहता है, वह उनको अपना शत्रु माने बिना कैसे रह सकता है? जो सबका शत्रु बन जाता है, वह तपस्या के बाद ईश्वर से वरदान भी आसुरी ही माँगता है। अपने चारों तरफ संरक्षण-भावना का परकोट बनाकर मनुष्यों से अलग पड़ जाता है। जो मनुष्यों को शत्रु मानकर अलग होना चाहता है, वह अपने व्यक्तित्व का गला घोंटकर जीवन से ही हाथ धो बैठता है। इस प्रकार परिग्रह-भावना की बदौलत आसुरी सम्पत्ति की सत्ता शुरू हो जाती है। अतः जब तक

अमीरी और गरीबी का अन्त नहीं होगा, तब तक मनुष्यता का संरक्षण असंभव है।

दान और यज्ञ में बंधुत्वमूलक प्रक्रिया

अमीरी और गरीबी की बदौलत मनुष्य मनुष्य से दूर पड़ जाता है। इसलिए हम अमीरी और गरीबी का अन्त कर देना चाहते हैं। स्पष्ट है कि अमीरी और गरीबी के निराकरण की प्रक्रिया भी मनुष्यता और बन्धुत्व का विकास करनेवाली होनी चाहिए। यह गुण विनोबा की 'दान-यज्ञ' प्रक्रिया में है। बन्धुत्व पर अधिष्ठित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए सम्पत्ति और भूमि के पुनर्वितरण की प्रक्रिया भी बन्धुत्व-मूलक होनी चाहिए। तभी वह सम्पत्ति सार्वजनिक अथवा अखिल मानवीय होगी।

आसुरी सम्पत्ति प्रभुत्व की भावना पर आधार रखती है। दैवी सम्पत्ति कल्पित वाद से कलुषित होती है। परन्तु मानवीय संस्कृति श्रम पर आधार रखती है, इसलिए उसमें बन्धुत्व के दो आचारात्मक तत्वों का अर्थात् दान और यज्ञ का महत्व है। असुरों की मदिरा में मादकता है, देवों के अमृत में केवल मिठास है, बहुत मीठा खाने से मुँह मीठा हो जाता है। परन्तु श्रमनिष्ठ उत्पादन-पद्धति से उपार्जित हमारे अन्न में अद्भुत स्वाद होता है। उसमें जीवन के सारे रस और धरतीमाता का समूचा सौरभ होता है।

: ५ :

क्रांति के बीज

गरीबों से दान क्यों ?

कुछ ऐसे तटस्थ समाज-सेवक, जिनके मन में गरीबों के साथ सहानुभूति है और जिनका सम्बन्ध किसी राजनैतिक दल या आर्थिकवाद से नहीं है, अक्सर पूछते हैं कि "भूदान-यज्ञ में गरीबों से दान क्यों लिया जाता है ? गरीबों के पास तो पहले ही इतना थोड़ा है कि जिससे उनका पेट तक नहीं भरता। तो फिर उनसे माँगने से क्या मतलब ? गरीबों को और भी गरीब बनाने से क्या फायदा ?"

बेड़ी तोड़ने का संकेत

देखने में यह आक्षेप बिलकुल लाजवाब मालूम होता है। लेकिन उसके पीछे एक बहुत बड़ा विचार-दोष है। पूँजीवाद में मनुष्य को गुलाम बनानेवाली सबसे जबरदस्त जंजीर मालकियत का मोह है। व्यक्तिशः बहुत-से पूँजीपति अपनी-अपनी सम्पत्ति के रक्षण के लिए कुछ दरबान और रखवाले रख लेते हैं और उनको तनख्वाह दिया करते हैं। परन्तु इतने से बड़े-बड़े पूँजीपतियों का व्यक्तिगत संरक्षण होगा ! पूँजीवाद के ही संरक्षण की यह योजना नहीं है। इसलिए पूँजीवाद में छोटे-छोटे मालिकों को भी मालकियत का अधिकार दे दिया गया है। इस मालकियत के मोह से वे पूँजीवाद के रखवाले बन जाते हैं। यह छोटी मालकियत वह बेड़ी है, जो गरीब मालिकों को अपनी इच्छा से पूँजीवाद के कारागृह में उनको बन्द रखती है। गरीब जबतक मालकियत के मोह का विसर्जन नहीं करेगा, तबतक उसकी गरीबी खत्म नहीं होगी। जब हम गरीब से

दान माँगते हैं, तो उससे कहते हैं कि तू इस बेड़ी को तोड़ देने का संकेत कर।

मालकियत के विसर्जन का संकेत

मालकियत की आकांक्षा आर्थिक विषमता की जड़ है। आज का गरीब खुद अमीर बनना चाहता है। वह गरीबी और अमीरी का निराकरण नहीं करना चाहता। इसलिए उसके मन में अमीरों के लिए ईर्ष्या और द्वेष है। लेकिन अपने से अधिक गरीब के लिए सहानुभूति नहीं है। हरेक गरीब अपने लिए अमीरी चाहता है, सबके लिए नहीं। अगर वह सबके लिए अमीरी चाहता है, तो उसे अपनी मालकियत अपने से अधिक गरीब आदमियों के साथ बाँट लेनी चाहिए। जब वह अपनी छोटी-सी मालकियत में से भी नैवेद्य की तरह थोड़ा-सा हिस्सा राष्ट्र को अर्पित कर देगा, तब वह अपनी अल्प सम्पत्ति में संपत्तिहीनों को शामिल करने का संकेत करेगा।

मूल पर कुल्हाड़ी

जिसके पास धन होता है, उसके मन में दूसरों के लिए डर और अविश्वास होता है। मेरे शरीर पर अगर सोने के गहने हों, तो मैं निर्भय होकर रास्ते से नहीं चलता और घर में भी निर्भय होकर नहीं सोता। दूसरों से डरता रहता हूँ। इसलिए अमीर का डर तो हमारी समझ में आता है। लेकिन गरीब को किस बात का डर है? क्या किसी कैदी को यह डर होता है कि कोई मेरी बेड़ी न चुरा ले, या छीन ले? या कोई मेरे जेलखाने को न लूट ले? जो एक एकड़, दो एकड़ और आध एकड़ के मालिक हैं, वे भी तो भूखे और नंगे हैं। उनकी मिलकियत अगर कोई छीन ले या चुरा ले, तो वह बेड़ी और हथकड़ी ही चुरायेगा। फिर भी हम देखते हैं कि छोटे मालिक को अपनी मालकियत के खो जाने का डर है। जबतक वह इस मालकियत के मोह का त्याग नहीं करता, तबतक पूँजीवाद के मूल पर कुल्हाड़ी की चोट नहीं पड़ेगी।

मालकियत के विसर्जन की प्रक्रिया

बड़ा मालिक जब संगठन शुरू करेगा तो छोटे मालिक से कहेगा कि अगर मेरे पचास एकड़ जायेंगे तो तेरे पाँच एकड़ भी कहाँ रहेंगे ? जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे तेरे पाँच एकड़ छीन लेंगे। छोटा मालिक उसके चकमे में आ जाता है और मालकियत के मोह के कारण पूँजीवाद के जाल में फँस जाता है। लेकिन अगर पाँच एकड़ वाला कह दे कि यह लो, यह छोटी मालकियत मैंने फेंक दी, तो वह पूँजीवाद की जड़ें ही खोद देता है।

आखिर जहाँ सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण क़ानून से और शासन से किया जाता है, वहाँ भी छोटे मालिकों की मालकियत छीन लेनी ही पड़ती है। उत्पादन के साधनों की व्यक्तिगत मालकियत खत्म करने के लिए गरीब की मालकियत भी छीननी पड़ती है। अहिंसक प्रकिया में भी अपरिग्रह की भावना बड़े मालिक और छोटे मालिक, दोनों को स्वीकार करनी पड़ती है। इसलिए दोनों को अपनी-अपनी मालकियत का उत्सर्ग करने की प्रेरणा होनी चाहिए। गरीबों से जो दान लिया जाता है, उसमें से यह प्रेरणा होती है। गरीबों का दान मालकियत के विसर्जन की प्रक्रिया का आरम्भ है।

जोड़नेवाली कड़ी

छोटे मालिक, कम गरीब और बहुत गरीब तथा केवल मजदूर, तीनों का संयुक्त मोर्चा तब बनेगा, जबकि तीनों अपने से अधिक गरीब के लिए सहानुभूति सक्रिय रूप से प्रकट करेंगे। केवल अमीरों का विरोध करने से गरीबों में भावरूप एकता कायम नहीं होगी। वह केवल प्रतिकारात्मक संगठन से और कागजी विधानों से भी नहीं होगी। उसके लिए हृदय की भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। यह सबूत दान के रूप में ही प्रकट हो सकता है। इसलिए गरीबों का दान, गरीब और मजदूर को एक-दूसरे के साथ जोड़ देनेवाली कड़ी है।

क्रांति के बीज का गुणधर्म

किसान अक्सर खाने के दाने अलग रखता है और बीज के दाने अलग। खाने के दाने से बीज का दाना अधिक गुण-सम्पन्न होता है। अमीर के दान से मालकियत का बँटवारा होगा। धन और धरती की मालकियत बँट जायगी। लेकिन मालकियत के ही विसर्जन की क्रान्ति गरीब के दान से होगी। गरीब के दान में क्रान्ति के बीज का गुण-धर्म होगा। इसलिए अहिंसात्मक क्रान्ति की प्रक्रिया में गरीब के स्वामित्व के उत्सर्ग का महत्त्व मूलभूत है।

मूल प्रेरणा

आखिर सशस्त्र क्रान्ति में भी क्रान्तिकारी सिपाही की ताकत उसकी वर्दी और हथियार में नहीं होती। उस वर्दी के पीछे छिपी हुई छाती की धड़कन में होती है। इस धड़कन का नाम भावना है। साम्यवादियों का यह दावा है कि क्रान्ति की भावना और प्रेरणा से ही रूस के सिपाहियों की अभेद्य छातियों ने क्रान्ति के दुर्ग का संरक्षण किया। भावना जितनी शुद्ध और उदात्त होगी, क्रान्ति के सैनिक की शक्ति भी उतनी ही अमोघ होगी। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन है। वह शोषित और दलित वर्ग का उत्साह और वीरता बढ़ानेवाला है। वह क्रान्ति का विरोधी नहीं है। विरोधी है, रक्तपात, क्रूरता और हृदय-हीनता का।

क्या यह राष्ट्रीयकरण नहीं है ?

एक बात और हमेशा कही जाती है कि बड़े-बड़े सामन्तों की और भूमिपतियों की जमीनों का राष्ट्रीयकरण करके उन्हें छोटे किसानों और भूमिहीनों में बाँट देना चाहिए। ये जमीनें उनके मौजूदा मालिकों से बगैर मुआवजे के जब्त कर लेनी चाहिए। इसमें असली तत्त्व की बात जब्त करने की नहीं है। तत्त्व की बात यह है कि ये जमीनें बड़े आदमियों से राज्य अपने कब्जे में ले ले और बगैर मुआवजे के ले ले। फिर राज्य उनका बँटवारा करे। इस तरह का बँटवारा अगर राज्य की तरफ से होगा, तो वह दान होगा, जिसके लेने से गरीब की शान में कोई बट्टा नहीं लगेगा।

गैर-सरकारी राष्ट्रीयकरण

आखिर भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया का नतीजा यही नहीं तो और क्या है ? बड़े आदमियों से जो दान लिया जाता है, उसके बदले में उन्हें क्या मिलनेवाला है ? उनसे तो बगैर मुआवजे के ही उनकी करीब-करीब सारी जमीन विनोबा माँग रहे हैं न ? यह दान एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी मर्जी से नहीं देता। वह तो विनोबा को देता है। विनोबा व्यक्ति नहीं हैं, दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि हैं। वे भी अपनी मर्जी से किसी व्यक्ति को जमीन नहीं देते। जनता के सामने भूमिहीनों के एकमत से भूमिहीनों को देते हैं। यह सरकार-निरपेक्ष राष्ट्रीयकरण नहीं तो और क्या है ? इसमें जोर-जबरदस्ती और जल्दी नहीं है, इसलिए क्या उसका स्वरूप और गुण बदल जाता है ?

क्या यह मिट्टी-फंड है ?

कुछ आक्षेपकों ने तो यहाँ तक कह डाला कि "कस्तूरबा गांधी-फंड और गांधी-स्मारक-निधि की तरह यह भी एक फंड है और उन फंडों का जो हाल हुआ वही इस मिट्टी-निधि का भी होगा।" अगर यह आक्षेप गम्भीरतापूर्वक न किया जाता, तो इसकी तरफ ध्यान देने की जरूरत न होती।

क्या जिस तरह पैसा और दूसरी उपयोगी चीजें इकट्ठी करके किसी बैंक या दूकान में रखी जा सकती हैं, उसी तरह जमीन भी कोई अपने पास रख सकता है ? क्या जमीन कोई उठाकर ले जा सकता है ? जमीन जहाँ-की-तहाँ रहेगी। सवाल इतना ही है कि उसके बँटवारे में कोई पक्षपात तो नहीं होगा ? यह प्रश्न तो तब भी रहेगा, जबकि सारी जमीन राज्य अपने कब्जे में लेकर बँटवारा करेगा। उस वक्त भी सत्ताधारी दल और उस दल का अन्तर्गत सत्ताधारी गिरोह ही बँटवारा करायेगा। उस आपत्ति से बचने के लिए विनोबा ने बँटवारे की विधि और पद्धति अधिक-से-अधिक निर्दोष रखी की है। उसमें गलती की गुंजाइश है, पक्षपात की नहीं।

: ६ :

ऊसर ज़मीन के दान पर आक्षेप

एक आक्षेप बार-बार किया जाता है कि भूमि-दान-यज्ञ में जो जमीन मिलती है, उसमें से बहुत-सी जमीन बंजर, ऊसर और बेकार होती है। देनेवाले अपनी जान छुड़ाने के लिए और झूठी शोहरत कमाने के लिए इस तरह की फालतू जमीन दे देते हैं। उनकी इज्जत होती है और हमारा काम नहीं होता।

वस्तुस्थिति यह नहीं है

सुनने में यह आक्षेप सही मालूम होता है; लेकिन उसमें सचाई का अंश बहुत कम है। क्या बिहार में विनोबा को जिन्होंने लाख-लाख एकड़ जमीन दी है, वह सबकी-सब ऊसर और निकम्मी है? जिनके पास इतनी जमीन थी, उसमें से कुछ परती जरूर रही होगी। लेकिन उतने से वह ऊसर या बंजर नहीं कही जा सकती। बड़े-बड़े मालिकों ने जिस प्रकार विनोबा को जमीन दी है, उसी प्रकार छोटे-छोटे किसानों ने भी दी है। इन छोटे किसानों के पास तो कोई ज्यादा जमीन नहीं थी। उन्होंने अपनी जेरकाश्त जमीन में से ही जमीन दी। कई लोगोंने तो अपनी जमीन का आधा, तिहाई, चौथाई और छठा हिस्सा दिया है। बिहार में और दूसरे प्रान्तों में भी भूदान में चार-चार, पाँच-पाँच हजार रुपये फी एकड़ कीमत की जमीन मिली है। भूदान-कार्यकर्ताओं का ऐसा अनुभव नहीं है कि बेकार जमीन ही अधिक मात्रा में मिलती है। इसलिए यह कहना बहुत गलत है कि भूदान में बेकार जमीन ही अधिक मिलती है।

काम थोड़े ही रुकेगा ?

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भूमि-दान की अभी तो पहली किस्त ही वसूल की जा रही है। १९५४ तक सारे देश के लिए पचीस लाख का लक्ष्य रखा गया था, लेकिन १९५७ तक पाँच करोड़ एकड़ जमीन भूदान में इकट्ठी करनी है। उत्तर प्रदेश में पाँच लाख का लक्ष्य पूरा हो जाने पर भी काम बन्द नहीं हुआ। अब एक करोड़ का लक्ष्य है। बिहार में एक-एक जिले से तीन-तीन लाख एकड़ जमीन इकट्ठी करने के संकल्प किये गये हैं। इतनी बंजर और ऊसर जमीन कहाँ से आयगी ? पहली किस्त में बंजर और ऊसर जमीन भले ही मिल गयी हो, परन्तु जबतक पाँच करोड़ एकड़ का लक्ष्य पूरा नहीं होगा, तबतक भूदान का काम नहीं होगा। अगली किस्त में अच्छी जमीन भी आने ही वाली है।

मालकियत ढीली पड़ रही है

क्रान्ति की प्रक्रिया में मुख्य महत्त्व भावना-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन का है। आजकल यह ऊसर और बंजर जमीन जिन मालिकों के पास थी, क्या उसे वे अपनी सम्पत्ति नहीं समझते थे ? क्या वे एक-एक चप्पा जमीन के लिए लड़ाई-झगड़ा करने पर आमादा नहीं हो जाते थे ? आज जमाने की माँग देखकर वे उस जमीन पर से अपनी मालकियत हटा लेने के लिए तैयार हो रहे हैं। अर्थात् उनकी मालकियत की भावना ढीली पड़ने लगी है। जो लोग इस तरह दस एकड़, बीस एकड़, पचासों एकड़ और सैकड़ों एकड़ ऊसर जमीन भूमि-दान में दे देंगे, वे जब कानून बनेगा, उस वक्त उसका मुआवजा नहीं मांगेंगे। इस भावनात्मक परि-वर्तन से मुआवजे की समस्या, अगर हल नहीं हो जाती, तो कम-से-कम, सुगम तो हो ही जाती है। क्रान्ति का आरम्भ हमेशा इस प्रकार के वृत्ति-परिवर्तन से ही हुआ करता है।

समय धोखा नहीं खाता

जो लोग अत्यन्त स्थूल लाभ और हानि की दृष्टि से विचार करते हैं,

उनसे भी हमारी एक विनय है। जो छोटे-छोटे मालिक हैं और खुद जमीन जोतते हैं, उनके पास जैसी जमीन है, उसीमें से वे देते हैं। उन्हें तो हम कोई दोष नहीं दे सकते। जिसके पास सिर्फ चने हैं, वह चने ही देता है। वह मोतीचूर कहाँ से लाये? हमारे लिए तो उसका चना ही मोतीचूर है। लेकिन जो लोग मोतीचूर अपने पास रखकर विनोबा को चने देते हैं, उससे भी विनोबा का क्या नुकसान होता है? वे लोग वक्त टाल देने के लिए और मुँह रखने के लिए चाहे जैसी जमीन दे देते होंगे, लेकिन इससे न तो वक्त टलता है, न इज्जत बचती है। लोग देखते हैं कि गरीबों ने तो अपनी-अपनी खेती की जमीन में से विनोबा को दान में यथाशक्ति जमीन दी, लेकिन बड़े आदमियों ने अपनी बेकार जमीन में से जमीन देकर दान का स्वांग किया। इससे गुनाह बेलज्जत हो जायगा। दान का दान न होगा और ऊपर से बदनामी होगी। तब बिगड़ी हुई बनाने के लिए फिर अच्छी जमीन देनी ही पड़ेगी। पुण्य-कार्य में सफलता और कार्यहानि जैसी कोई चीज है ही नहीं।

: ७ :

जमीन पानेवाले का गौरव

जमीन

कुछ लोगों को लगता है कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन से दाता की प्रतिष्ठा बढ़ती है। वह जमीन देता है, इसलिए लोगों के सामने उसका नाम आता है। दूसरे लोगों से उसका अनुकरण करने के लिए कहा जाता है। लोग उसे धन्यवाद देते हैं। जो कार्यकर्ता जमीन के दान-पत्र प्राप्त करता है, उसकी भी प्रशंसा और गौरव होता है। इन दोनों को तो यह आन्दोलन पुरुषार्थ और प्रतिष्ठा के लिए अवसर देता है, लेकिन जो जमीन पाता है, वह तो केवल प्रतिग्रह करता है। उसके लिए न तो पुरुषार्थ का अवसर है और न प्रतिष्ठा का।

बल-प्रयोग में भी यही दोष

यों सुनने में यह आक्षेप तर्क-संगत और वास्तविक मालूम होता है। परन्तु गहराई से विचार करने के बाद पता चलता है कि इसमें बहुत तथ्य नहीं है। भूदान-यज्ञ-आंदोलन की जगह दो ही पर्याय हो सकते हैं। एक तो यह कि कुछ लोग संगठित होकर जोर-जबरदस्ती से या शस्त्र-प्रयोग से बड़े किसानों से तथा जमीन-मालिकों से जमीन छीन लें और उसे बिलकुल छोटे किसानों को तथा भूमिहीन मजदूरों को बाँट दें। परन्तु इसमें भी जो भूमिहीन मजदूर या बिलकुल थोड़ी जमीन वाला किसान जमीन पायेगा, उसके पुरुषार्थ के लिए कौनसी गुंजाइश है? उसके नाम पर जो मुट्ठी भर लोग संगठित बल-प्रयोग करेंगे, उनका बोलबाला होगा। लेकिन यह गरीब किसान तो सिर्फ पानेवाला ही रहेगा।

कानून की प्रक्रिया में भी वही दोष

दूसरा पर्याय यह है कि राज्य कानून बनाकर मालिकों की और बड़े किसानों की अतिरिक्त जमीन जब्त कर ले और उसे छोटे किसानों में तथा खेती के मजदूरों में बाँट दे। इसमें भी जो लोग जमीन पायेंगे, उनके पराक्रम के लिए जगह नहीं है। राज्य कानून से लेगा और उनको दे देगा। वे तो केवल दान-पात्र ही रह जाते हैं।

पानेवाले की क्या इज्जत ?

मतलब यह कि भूमिदान-यज्ञ-आन्दोलन में जो दोष बतलाया जाता है, वही भूमि छीनने की या भूमि जब्त करने की प्रक्रिया में भी मौजूद है। अर्थात् अगर वह दोष है, तो सभी प्रक्रियाओं के लिए समान दोष है। अकेली भूमिदान-आन्दोलन-प्रक्रिया का ही वह दोष नहीं है। इतना फर्क जरूर है कि शस्त्र-प्रयोग की प्रक्रिया में जमींदारों या मालिकों की इज्जत नहीं होती, इज्जत होती है छीननेवालों की, परन्तु ये छीननेवाले भी छोटे किसान और भूमिहीन मजदूरों के तो उद्धारकर्ता ही माने जाते हैं। इससे उस बेचारे का रुतबा क्या बढ़ा ?

मूलभूत विचार-दोष

असली बात यह है कि इस आक्षेप के मूल में एक विचार-दोष है। जिसका अधिकार छीना गया है, उसका अधिकार उसको वापस मिल जाता है, इसीमें उसका गौरव है। मेरे घर अगर चोरी हो गयी और पुलिस ने तहकीकात के बाद चोरी पकड़ ली, और मेरी चीज मुझे लौटा दी, तो क्या यह मेरा गौरव नहीं है ? अब इससे अधिक गौरव मेरा क्या हो सकता है ? या फिर चोर ही थोड़ी देर के बाद होश में आ जाय और लोकलाज, पश्चात्ताप या समझदारी के कारण अथवा किसी के समझाने-बुझाने से मेरी चीज लौटा दे, तो क्या इसमें मेरी इज्जत नहीं है ? जिसकी चीज खो गयी है या छिन गयी है, उसकी चीज उसे वापस मिल जाती है, इतना ही काफी है। चीज जिसके कब्जे में है, वह अगर

समझदारी से काम लेता है और बगैर झगड़े-टंटेके चीज लौटा देता है, तो हम उसे बधाई जरूर देंगे। कोई शराबखोर अगर कानून के बिना और जोर-जबरदस्ती के बिना शराब पीना छोड़ दे, तो क्या हम उसके प्रति सन्तोष नहीं प्रकट करेंगे ?

इस प्रक्रिया की विशेषता

भूदान-यज्ञ-आंदोलन में भी यही होता है। इसके अलावा एक बात और होती है। जिसने अनधिकृत रूप से केवल परम्परागत अर्थ-व्यवस्था के आधार पर सम्पत्ति पायी है, वह अपनी अन्यायमूलक मालकियत के दोष को समझने लगता है और उस अन्याय का परिमार्जन करने लगता है। इस हृदय-परिवर्तन का मूल्य अपरिमित है।

परिश्रम का उचित गौरव

एक व्यक्ति क्रिकेट का अच्छा खिलाड़ी है, एक व्यक्ति वीणावादन-पटु है और एक बहुत प्रवीण लेखक है। आपको इनमें से हरेक का गौरव करना हो तो किस प्रकार करेंगे? जो क्रिकेट-पटु है, एक उत्कृष्ट बैट आप उसको भेंट करेंगे। जो वीणा-प्रवीण है, उसे एक उत्कृष्ट वीणा देंगे और जो लेखन-कुशल है, उसे एक बढ़िया कलम देंगे। श्री छत्रपति शिवाजी महाराज प्रतापी वीर पुरुष थे। जगन्माता भवानी ने उन्हें प्रसाद के रूप में एक सुप्रसिद्ध तलवार दी। हरेक के गुण और कार्य-कुशलता के अनुरूप हम उसे औजार या उपकरण देते हैं। उसका गौरव करने की यही प्रशस्त पद्धति है। उसी प्रकार जो भूमिहीन हैं, परन्तु जमीन जोतते हैं और परिश्रम से सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं, उन्हें परिश्रम का साधन देकर हम उनका गौरव करते हैं। यही उनका उचित समादर है।

जमीन का समाजीकरण

पीछे हमने बतलाया है कि भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया एक तरह से भूमि के राष्ट्रीयकरण की ही प्रक्रिया है। 'राष्ट्रीयकरण' शब्द का प्रयोग हमने

'समाजीकरण' के अर्थ में किया है। राज्य का कोई अधिकारी, राज्य-प्रतिनिधि की हैसियत से कानून के आधार पर जब भूमि ले लेता है, तो उसी भूमि का 'राज्यीकरण' होता है। वह प्रक्रिया 'राज्य-स्वामित्व' की है, 'लोक-स्वामित्व' की नहीं। 'लोक-स्वामित्व' की प्रक्रिया में भूमि का संग्रह लोक-प्रतिनिधि करेंगे। जो मालिक अपनी मालकियत का उत्सर्ग करना चाहते हैं, उनके भी वे प्रतिनिधि होंगे और जिन श्रमिकों को वह जमीन मिलती है, उनके भी वे प्रतिनिधि होंगे। विनोबा इस प्रतिनिधित्व के 'प्रतीक' मात्र हैं। यह 'लोक-स्वामित्व' की स्थापना की अद्‌भुत कल्याणकारी प्रक्रिया है। इसमें दोनों धन्य होते हैं—देनेवाला भी, पानेवाला भी।

पानेवाले का सार्वजनिक सम्मान

हमारे आक्षेपक मित्र अगर चाहें तो प्रसंगोचित समारोह करके भूमि-हीनों को नारियल, सुपारी तथा अक्षत के साथ जमीन दे सकते हैं। उससे जो वातावरण पैदा होगा, उसके कारण जमीन पानेवाले के मन में कृतज्ञता के साथ-साथ आत्म-सम्मान की भावना भी पैदा होगी।

भूदान-यज्ञ : सत्याग्रह का विधायक स्वरूप

सत्याग्रह के अनेक अर्थ

सत्याग्रह के बारे में कई प्रकार के प्रश्न हमारे साथियों के मन में उठते हैं और हमारे साथ मिलकर विचार करने के लिए वे उन प्रश्नों को हमारे सामने रखते हैं। एक प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या भूदान-यज्ञ-आन्दोलन भी सत्याग्रह का ही एक रूप है? उस आन्दोलन के प्रणेता विनोबा ने भी हाल में ही यह कहा कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन सत्याग्रह के अनेक रूपों में से एक है। इसलिए जो लोग यह पूछते हैं कि क्या दान और यज्ञ का आन्दोलन यदि पर्याप्त साबित नहीं हुआ, तो विनोबा सत्याग्रह करेंगे? उन लोगों को विनोबा यह जवाब दिया करते हैं कि भूदान-यज्ञ भी सत्याग्रह का ही रूप है।

हमारे मन में सत्याग्रह के अर्थ के विषय में बहुत-से भ्रम हैं, इसलिए विनोबा के इस कथन से हमें ठीक-ठीक बोध नहीं होता। इस विषय पर थोड़ा विचार करने की जरूरत है।

जीवन गतिमान् है

सत्याग्रह एक जीवन-दर्शन है। हमारा जीवन गतिमान् है। अर्थात् वह हमेशा चलता रहता है; रुकता नहीं है। उसे कोई नहीं रोक सकता। इसलिए जितने दर्शनों का जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध होता है, वे कभी रुकते नहीं हैं और परिपूर्ण भी नहीं होते। जिस दिन जीवन रुक जाता है, उस दिन या तो मृत्यु होती है या मुक्ति होती है। जीवन के नष्ट होने को लोग मृत्यु कहते हैं, और उसकी परिपूर्णता को मोक्ष कहते हैं। इसीलिए मोक्ष का पर्यायवाची शब्द अमृतत्व भी है। मौत की तरफ से अमरत्व की तरफ जाने की व्यवस्थित चेष्टा का नाम साधना है। अतः

हमारे लिए जीवन एक सिद्ध वस्तु या बनी-बनायी चीज नहीं है। जब हम पैदा होते हैं, तब अपने साथ कुछ लेकर आते हैं। उसके बाद हम कुछ बनने की लगातार कोशिश करते हैं। हम कुछ हैं और कुछ बनना चाहते हैं। जो कुछ हम बनना चाहते हैं, उसकी तरफ कदम बढ़ाने का नाम ही साधना है। अन्याय के प्रतिकार के क्षेत्र में मनुष्य ने अपने मानवीय गुणों का विकास करने का जो प्रयास किया है, उसीमें से सत्याग्रह का आविष्कार हुआ है।

सत्याग्रह का आविष्कार

यहाँ 'आविष्कार' शब्द उसके दोनों अर्थों में काम में लाया गया है। हिन्दी में 'आविष्कार' शब्द का प्रचलित अर्थ है 'खोज' या 'शोध', जिसे अंग्रेजी में 'डिस्कवरी' कहते हैं। अन्य भारतीय भाषाओं में 'आविष्कार' का अर्थ है 'प्रकट होना', 'बाहर दिखाई देना', 'अभिव्यक्त होना'। अंग्रेजी में भी 'डिस्कवर' शब्द का दूसरा अर्थ है 'अपने आपको प्रकट करना', 'दृष्टिगोचर होना'। सत्याग्रह इन दोनों अर्थों में 'आविष्कार' है। वह एक नया शोध भी है और उसके द्वारा हमारा जीवन अधिक प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त भी होता है।

'प्रतिकार' का अर्थ

'प्रतिकार' शब्द के विषय में भी हमारी बुद्धि स्पष्ट होनी चाहिए। संस्कृत भाषा में 'प्रतिकार' का अर्थ 'जवाब में या बदले में कोई काम करना', इतना ही है। किसी ने हमारा उपकार किया हो और उसके बदले में हम उसकी कोई भलाई करें, तो वह भी प्रतिकार ही है। मतलब यह कि प्रतिकार के मूल अर्थ में केवल विरोध का समावेश नहीं होता। प्रतिकार सहयोगात्मक भी होता है और विरोधात्मक भी। दूसरे के अन्याय या बुरे काम का जब हम विरोध करते हैं, तब भी असल में हमारा विरोध उस व्यक्ति के लिए सहयोगात्मक होना चाहिए। विरोधात्मक सत्याग्रह का उद्देश्य और उसकी प्रेरणा सहयोगात्मक ही होती है। इसीलिए सामुदायिक सत्याग्रह के आद्य प्रवर्तक गांधीजी आग्रहपूर्वक

और विश्वासपूर्वक कहा करते थे कि सत्याग्रह प्रेममूलक और सेवामय होता है, इसीलिए उसमें उभय कल्याणकारिता का अद्वितीय लक्षण है।

सहयोगात्मक प्रतिकार

अब सुबुद्ध पाठकों को यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि विनोबा भूदान-यज्ञ को सत्याग्रह का रूप क्यों कहते हैं। बुराई के निवारण के लिए जो-कुछ किया जाता है, वह सब प्रतिकार ही है। चाहे वह फिर सहयोगात्मक हो या विरोधात्मक। बुरा काम करनेवाला व्यक्ति जब बुराई को ही अपना स्वत्व मान लेता है, तो वह उसके प्रतिकार में सहयोग नहीं देता। अपनी बुराई का ही समर्थन और परीक्षण करने में सारी शक्ति लगा देता है। ऐसा व्यक्ति सत्याग्रही को अपना प्रतिपक्षी भले ही माने, परन्तु सत्याग्रही उसे अपना प्रतिपक्षी नहीं मान सकता। वह तो अपने को उसका सहयोगी ही मानता है। जब वह विरोध करता है, तब भी वस्तु-विशेष और कृति-विशेष का विरोध करता है, न कि व्यक्ति-विशेष का।

सत्याग्रह की विशेषता

इस दृष्टि से भूदान-यज्ञ-आन्दोलन केवल कष्ट-निवारण और दुःख-निवारण का आन्दोलन नहीं है। वह सत्याग्रही क्रान्ति की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। आज का अमीर अपनी अमीरी को अपनी बीमारी नहीं मानता। वह दुष्ट नहीं है। लेकिन दोष को ही अपना स्वत्व मानने लगा है। अपरिमित परिग्रह की प्रवृत्ति और कौटुंबिक तथा वैयक्तिक स्वामित्व को ही वह अपना स्वत्व समझता है। इसलिए वह सहज तत्पर-रता से अमीरी और गरीबी के निराकरण में सहयोग नहीं देता। कभी हिचकता है, कभी आनाकानी करता है, कभी हीले-हवाले करता है। सोचता है, आज की मौत कल तक तो टली। हमें उसके दोष के निवारण के लिए ऐसी प्रक्रिया खोजनी चाहिए और विकसित करनी चाहिए, जिससे कि उसके दोष-निवारण के साथ-साथ उसका हृदय-परिवर्तन भी हो और अन्त में वह हमारी सफलता को अपनी सफलता समझने लगे। सत्याग्रह की प्रक्रिया में यह अन्यतम विशेषता है कि उसमें एक की जीत

और दूसरे की हार नहीं होती। दोनों पक्षों की विजय होती है। अमीरी और गरीबी के निवारण में गरीब की सफलता को अमीर भी जब अपनी सफलता समझने लगेगा तो उसका हृदय-परिवर्तन होगा और वह गरीब का सहयोगी बन जायगा।

हृदय-परिवर्तन का आरंभ

परन्तु जब तक हमारा अपना हृदय-परिवर्तन नहीं होता है, तब तक हमारा विरोध सत्याग्रह नहीं हो सकता। गरीब के हृदय-परिवर्तन के बिना उसके सत्याग्रह का परिणाम अमीर के हृदय-परिवर्तन में कभी नहीं होगा। अगर गरीब का हृदय-परिवर्तन नहीं होगा तो गरीबी और अमीरी भी किसी हालत में खत्म नहीं होगी। हमें अपना दिल खोलकर अपने आपसे यह पूछना चाहिए कि क्या हम सिर्फ अपनी गरीबी का निवारण करना चाहते हैं या समाज में से गरीबी और अमीरी के भेद का, याने आर्थिक विषमता का, ही निवारण करना चाहते हैं? अगर हमारी नीयत सिर्फ अपनी गरीबी के निवारण की है, तो हमारी मनोवृत्ति अमीर की मनोवृत्ति से भिन्न नहीं है। वह धनाढ्य है और हम धनाकांक्षी हैं। दोनों में धनतृष्णा और लोभ समान रूप से विद्यमान हैं। जो खुद अमीर बनना चाहता है, वह यह नहीं चाहता कि दुनिया में गरीब कोई न रहे। वह तो इतना ही चाहता है कि मैं गरीब न रहूँ। यह मनोवृत्ति क्रान्तिकारक भूमिका के सर्वथा प्रतिकूल है। इसलिए अमीर के हृदय-परिवर्तन की अनिवार्य शर्त यह है कि पहले गरीब का हृदय-परिवर्तन हो।

गरीब की जिम्मेदारी

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में इसकी योजना है। गरीबों के पास अत्यल्प परिग्रह है, उनकी मिलकियत बहुत ही थोड़ी है। फिर भी उन्हें अपने परिग्रह से मोह है और अपनी मिलकियत बढ़ाने की निरन्तर चिन्ता है। गरीबी और अमीरी के निवारण में आखिर हमारा उद्देश्य क्या है? क्रान्ति के बाद भी समाज में कुछ दुष्ट व्यक्ति सम्भवतः रहेंगे। परन्तु जो समाज हम कायम करेंगे उसकी रचना में दुष्टता के प्रयोग के लिए कम-से-कम अवसर होगा तथा गरीबी और अमीरी के लिए कोई मौका

नहीं रहेगा। वर्गहीन समाज-व्यवस्था का यह प्रथम लक्षण है। ऐसी व्यवस्था कायम करने की आकांक्षा और आवश्यकता आज अमीरों की अपेक्षा गरीबों को ज्यादा महसूस होती है, इसलिए गरीब अपनी परिस्थिति में परिवर्तन चाहता है और अमीर उसको अधिक-से-अधिक समय तक बनाये रखना चाहता है। अतएव क्रान्ति की जिम्मेदारी गरीब पर आ जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि परिग्रह और कौटुम्बिक तथा निजी सम्पत्ति के विसर्जन में पहला कदम गरीब को उठाना चाहिए। गरीब जब अपने अत्यल्प परिग्रह का उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो जायगा, तो समाज में अपरिग्रह की भूमिका का निर्माण होगा। उसके मन में एक ऐसी अर्थ-रचना स्थापित करने की आकांक्षा होगी, जिसमें थोड़े-से मालिक और अधिकांश स्वामित्वहीन मजदूर नहीं रह सकेंगे।

मालकियत का विसर्जन

अगर मालकियत सबको बाँट दी जायगी तो सब फुटकर मालिक बन जायेंगे। ऐसी मालकियत 'गुनाह बेलज्जत' साबित होगी। इसलिए मालकियत के विसर्जन का लक्ष्य ही गरीब को अपने सामने रखना होगा। उसकी इस मनोवृत्ति का प्रमाण यह होगा कि वह अपनी मालकियत के विसर्जन से ही आरम्भ करता है। इस हृदय-परिवर्तन की दीक्षा भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के द्वारा आज गरीबों को मिल रही है। इसलिए विनोबा ने कहा कि मेरा आन्दोलन भिक्षा का समारोह नहीं है, क्रान्ति की दीक्षा देने का दिव्य पर्व है।

भूदान सत्याग्रह का ही रूप है

भूदान-यज्ञ आन्दोलन क्रान्ति की प्रक्रिया का उपक्रम है और सत्याग्रही प्रतिकार-नीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। यदि देश के सभी क्रांतिप्रिय और क्रांतिप्रवण लोग उसकी इस अर्थ-व्याप्ति को समझने की कोशिश करें, तो इस देश में एक ऐसी क्रान्ति सिद्ध होगी, जो मानव-मात्र के लिए पदार्थ-पाठ उपस्थित करेगी और संत्रस्त दुनिया को आशा का संदेश देगी।

• • •

: ९ :

नये युग की स्त्री के लिए सुयोग

'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' नामक अपनी पुस्तक में गांधीजी ने 'पैसिव रेजिस्टेंस' (अप्रत्यक्ष प्रतिकार) और 'सत्याग्रह' के फर्क का विस्तृत विवेचन किया है। पैसिव रेजिस्टेंस की मिसाल के तौर पर इंग्लैंड के स्त्री-मताधिकार-आन्दोलन का जिक्र उन्होंने किया है। स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले में कमजोर और निःशस्त्र हैं। वे सशस्त्र-विद्रोह या बाहुबल का प्रयोग नहीं कर सकतीं। इसलिए उन्होंने अप्रत्यक्ष प्रतिकार की शरण ली। अर्थात् जहाँ शस्त्रबल असाध्य हो, वहीं पर निःशस्त्र प्रतिकार को प्रशस्त और उपादेय माना गया है। उसे शस्त्र-प्रयोग की अपेक्षा गौण समझा गया।

तुल्यबल व तुल्यसत्त्व जीवन

सत्याग्रह और अप्रत्यक्ष प्रतिकार में यह मूलभूत फर्क है कि सत्याग्रह शस्त्र-प्रयोग की अपेक्षा गौण नहीं माना गया, बल्कि उससे श्रेष्ठ और अधिक कार्यक्षम माना गया है। वह उनके लिए भी है, जिनको शस्त्रबल सहज-प्राप्त और सहज-साध्य है, और उनके लिए भी है, जिनके हाथों में हथियार नहीं है। हथियार मिलना असम्भव है, हथियार मिल नहीं सकते या हथियारों से काम लेने की ताकत नहीं है, इसलिए जो सत्याग्रह की शरण लेते हैं, उनका भरोसा और निष्ठा तो हथियार में ही होती है। इसलिए उनके सत्याग्रह में तेज और सामर्थ्य नहीं होती। मनुष्य को यह भ्रम हो गया है कि शक्ति शरीर में और हथियार में होती है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री के मन में यह भ्रम कहीं अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसलिए वह अपने को पुरुष के सामने और उसकी तुलना में निर्बल तथा

निःसत्त्व समझती है। जब तक यह भ्रम स्त्री के मन में रहेगा, तब तक उसे स्वतन्त्र जीवन का आस्वाद नहीं मिलेगा। उसका जीवन और स्वतन्त्रता पुरुष की दी हुई होगी और दूसरे की दी हुई आजादी नकली, बनावटी और नाममात्र की होती है। असल में वह गुलामी ही होती है। जब तक यह हालत रहेगी, तब तक स्त्री पुरुष से तुल्य-बल और तुल्य-सत्त्व-जीवन की पात्रता नहीं प्राप्त कर सकेगी।

सच्चाई यह है कि मनुष्य की वीरता और उसकी शक्ति हथियारों में या उसके डील-डौल में नहीं होती। दुनिया के सभी वीर पुरुष अपने जमाने के सबसे अधिक विशालकाय या सबसे अधिक शस्त्र-सुसज्जित नहीं थे। रावण से राम का कद कहीं छोटा था और उनके हाथ भी दो ही थे। कंस से कृष्ण का आकार कहीं छोटा था। तिलक, गांधी, जवाहरलाल या नेताजी सुभाषचन्द्र बोस अपने जमाने के बहुत बड़े मल्ल या शस्त्रविशारद व्यक्ति नहीं माने गये। फिर भी उनकी वीरता और साहस के सभी लोग कायल हैं। स्त्रियाँ अगर इस तत्त्व को समझ लें और वह उनके दिल में जम जाय, तो उनकी कल्पित दुर्बलता एक पल में काफूर हो जायगी।

गांधी के सत्याग्रह का स्त्रियों की दृष्टि से यही अन्यतम महत्त्व है। सत्याग्रही क्रांति में स्त्री के लिए पुरुष की बराबरी से पराक्रम का अवसर है। स्त्री-जीवन की भूमिका और स्त्री के व्यक्तित्व के मूल में सत्याग्रही प्रक्रिया से जो क्रांति हो सकती है, वह बाहुबल पर आधार रखनेवाली किसी प्रक्रिया से कतई नहीं हो सकती। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की भी यही विशेषता है।

स्त्री-जीवन का स्वयंप्रतिष्ठित जीवन

शस्त्र और सम्पत्ति, जीवन-रक्षण तथा जीवन-निर्वाह के प्रमुख साधन माने गये हैं। जिसके हाथ में हथियार हो, वह अपनी और दूसरों की हिफाजत कर सकता है। इसलिए शस्त्र-धारी वीर पुरुष को अपना स्वत्व-

समर्पण करने में स्त्री अपने आपको धन्य मानती है। कांचन समृद्धि का प्रतीक माना गया है। जिसके पास सोना-चांदी है, उसे सुख और वैभव के साधन आसानी से मिल सकते हैं। इसीलिए स्त्री धनवान पुरुष को अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए लालायित रहती है। इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि जब कभी किसी पिता को अपनी कन्या के लिए वर खोजना होता है, तो अक्सर वह वर के हृदय तथा बुद्धि के गुणों की अपेक्षा उसकी भौतिक सम्पत्ति का विचार अधिक करता है। जो सम्पत्तिमान होगा और कांचनयुक्त होगा, वह स्त्री को अधिक सुख तथा आराम दे सकेगा। परिणाम यह हुआ कि स्त्री वैभवकांक्षी बन गयी है। यह दोष स्त्री के हृदय और भावना में उतना नहीं है, जितना कि उसकी भूमिका और सामाजिक परिस्थिति में है। सामाजिक मूल्यों में आमूलाग्र परिवर्तन करनेवाले आन्दोलन ही स्त्री-जीवन का मूल्य समाज में प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

जब हम लड़कियों के स्कूलों तथा कालेजों में जाते हैं, तो प्रायः सभी लड़कियों के मुँह से आर्थिक क्रांति के गीत और आर्थिक क्रांति के उद्गार सुनते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें से बहुतेरी लड़कियाँ अपने लिए ऐसा पति-गृह पसन्द करेंगी, जो कांचनसम्पन्न हो। यह विरोध जब तक सामाजिक परिस्थिति में विद्यमान है, तब तक स्त्री के लिए स्वयं-प्रतिष्ठित जीवन किसी भी संविधान से या कानून से प्रस्थापित नहीं हो सकता।

नारी के लिए अपूर्व सुयोग

कांचन-मुक्ति की क्रांति का आन्दोलन स्त्री के लिए स्वायत्त जीवन की पात्रता संपादन करने का सुयोग है। शस्त्र और कांचन की सत्ता का मूल्य समाप्त हो जाने पर स्त्री को पुरुष के साथ समान भूमिका प्राप्त हो जाती है। इस दृष्टि से हमारे देश की सभी स्त्रियाँ अगर भूदान-यज्ञ में सक्रिय भाग लेंगी, तो उनकी नागरिकता और राजनैतिक स्वतंत्रता,

मानवीय सामर्थ्य तथा गुणाश्रित पात्रता से सम्पन्न होगी। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में जो कांचन-मुक्ति का संकेत है, वह केवल गरीब और अमीर को ही समान धरातल पर नहीं लायेगा, बल्कि स्त्री और पुरुष में भी जो संस्कारजन्य तथा परिस्थितिजन्य कृत्रिम विषमता है, उसका भी पूर्ण रूप से निराकरण करेगा। नये युग की स्त्री के लिए भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में एक अनूठा संकेत है, अपूर्व सुयोग है और अनिवार्य आवाहन है।

● ● ●

संपत्ति-दान का क्रांतिकारी कदम

विनोबा ने जब यह विचार प्रकट किया कि वे सम्पत्तिमानों से उनकी सम्पत्ति का छठा हिस्सा भी मांगना चाहते हैं, तो पहले-पहल यह विचार कुछ अटपटा और असंगत-सा मालूम हुआ। भूदान-यज्ञ में केवल भूमि के बंटवारे की कल्पना नहीं है। उसका मूलभूत संकेत क्रांतिकारी है। जिनके पास जमीन नहीं है, उनको जमीन दे देना ही उसका उद्देश्य नहीं है। जिनके पास जमीन नहीं है और फिर भी जो जमीन जोतना चाहते हैं, जोतना जानते हैं या जोत रहे हैं, ऐसे उत्पादकों को जमीन दिलाना उस आंदोलन का प्रधान उद्देश्य है। किसके पास कितनी कम या अधिक जमीन है, यह सवाल नहीं है। भूमिदान-यज्ञ का मूलभूत उद्देश्य यह है कि उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथों में होना चाहिए।

कांचन-मुक्ति—क्रांतिकारी संकल्प

इसलिए यह आन्दोलन पैसे की प्रतिष्ठा का अन्त करनेवाला आंदोलन है और उत्पादक परिश्रम की सत्ता स्थापित करनेवाला आन्दोलन है। उसमें विनोबा किसी को उपभोग्य वस्तु नहीं दिलाते, उपभोग्य वस्तु खरीदने का साधन भी नहीं दिलाते; बल्कि उत्पादन का ही साधन दिलाते हैं। इसलिए जब उन्होंने कहा कि मैं किसी से पैसा नहीं लूँगा और जो मेरी मदद करना चाहता है, वह उत्पादन के साधन या उत्पादन के औजार खरीद कर दे, तब उन्होंने एक अद्भुत क्रांतिकारी संकल्प किया। उपभोग की वस्तु या उपभोग की वस्तु खरीदने का साधन दूसरे से ले लेने में हम देनेवाले का उपकार लेते हैं। लेनेवाले की भूमिका गौण हो जाती है। लेकिन उत्पादन का या परिश्रम का साधन किसी को देने में हम उसे उपकृत नहीं करते।

द्रव्यदान का दोष

यह न्याय सम्पत्ति के लिए लागू नहीं है। सम्पत्ति के उपार्जन में शोषण अनिवार्य है। जो व्यक्ति बड़े-बड़े कारखाने चलाकर मजदूरों का शोषण करता है, वह यदि हमको अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा दे देता है, तो एक तरह से मौजूदा सामाजिक परिस्थिति को बनाये रखने के लिए मानो हमसे सम्मति चाहता है। वह अपने कारखाने का छठा हिस्सा तो हमें नहीं देता, मज़दूरों का शोषण भी किसी तरह कम नहीं करता, मुनाफाखोरी बढ़ाता ही चला जाता है और जितना कमाता है, उसका छठा हिस्सा हमें देता चला जाता है। इस प्रकार के दान में से व्यक्तिगत पुण्य-संपादन भले ही हो; लेकिन आर्थिक विषमता का अन्त कदापि नहीं हो सकता।

पापमूलक दान

विनोबा उसकी रकम का ट्रस्टी उसीको बना देते हैं, इसलिए इसमें निधि की व्यवस्था का सवाल नहीं उठता। उसके दुरुपयोग की भी सम्भावना कम हो जाती है। परन्तु दाता की भूमिका में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार का दान समाज की अर्थ-व्यवस्था बदल देने का साधन नहीं बन सकता। एक नर्तकी है, वेश्या है और एक शराब का दूकानदार है। वे भी अपनी कमाई का छठा हिस्सा विनोबा को दे सकते हैं—प्रायश्चित्त के रूप में नहीं, किन्तु व्यक्तिगत पुण्य-संपादन के लिए। प्रशस्त और उपयुक्त उद्योग करनेवाले जिस प्रकार अपनी कमाई में से दान-धर्म करते हैं, उसी तरह से ये भी करेंगे। चोर भी अपने चोरी के माल में से देवी को भोग चढ़ाते हैं, शोषण करनेवाले भी मन्दिर, तालाब और धर्मशालाएँ बनवाकर दानवीर बन जाते हैं।

वास्तविक उद्देश्य

तो फिर विनोबा के इस नये संकेत का क्या अर्थ है? वे यह कहते हैं कि इस सम्पत्ति का विनियोग उनके निर्देश के अनुसार किया जायगा।

दाता की राय भी पूछी जायगी; लेकिन निर्णय विनोबा करेंगे। यदि कोई कारखानेदार उनके आदेश के अनुसार हर साल अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा देगा, तो वे उससे कह सकते हैं कि कारखाने के मजदूरों के लिए अधिक-से-अधिक स्वास्थ्य तथा सांस्कृतिक विकास के साधन इस रकम में से प्रस्तुत कर दो और धीरे-धीरे अपना कारखाना ही मुझे सौंप दो। साहूकार से वे कह सकते हैं कि जो रकम मेरे नाम की है, उसमें से उत्पादन के अमुक साधन और खेती के फलाने औजार खरीद दो। परन्तु इसके साथ-साथ उन्हें यह भी कहना होगा कि इस प्रकार का पैसा कमाना या सम्पत्ति का उपार्जन करना ही पापमय है, इसलिए धीरे-धीरे इस रोजगार को ही तुम बन्द कर दो। अगर कोई सटोरिया उन्हें छठा हिस्सा दे देता है, तो वे उससे कहेंगे कि तेरा रोजगार ही पापमय है। उसके प्रायश्चित्त के लिए अगर तू मुझे छठा हिस्सा देता है, तो शीघ्र-से-शीघ्र तुझे इस पापमय व्यवसाय को ही छोड़ देना चाहिए।

अनुत्पादक व्यवसाय का ही विसर्जन

सम्पत्ति के छठे हिस्से के दान में केवल सम्पत्ति के ही विसर्जन की भावना नहीं होगी, अपितु अनुत्पादक व्यवसाय के ही विसर्जन की भावना होगी। चाहे जैसे भले-बुरे मार्ग से सम्पत्ति का उपार्जन कर लिया और उसका छठा हिस्सा भर विनोबा को देकर पुण्यात्मा की प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली, ऐसी अगर किसी की धारणा हो, तो वह विनोबा के संकेत को नहीं समझा है। सम्पत्ति के अपने हिस्से के विनियोग के विषय में विनोबा जब निर्देश देने लगेंगे, उस वक्त उनके संकेत का पूरा-पूरा अर्थ इन दानियों पर और जनता पर प्रकट होगा।

अखंड दान की प्रक्रिया

भूदान-यज्ञ के बारे में भी कुछ लोगों को यह भ्रम है कि बड़े-बड़े जमींदार अपनी जमीन का छठा हिस्सा देकर बचे हुए पाँच हिस्सों का आराम के साथ उपभोग करते रहेंगे। जो लोग ऐसी मानते हैं, उनकी

समझ में भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की भूमिका ही नहीं आयी है। भूदान-यज्ञ में सम्पत्ति और स्वामित्व के विसर्जन का संकेत है। जो आज छठा हिस्सा देगा, वह कल उससे अधिक देगा और जब तक अपनी संपत्ति का विसर्जन नहीं करेगा, तब तक देता ही चला जायेगा। अन्यथा भूदान-यज्ञ के द्वारा अहिंसक प्रक्रिया से भूमि का संविभाजन कैसे हो सकता है?

संकेत के फलितार्थ

इसी संदर्भ में हमें विनोबा के इस नये कदम को देखना और समझना चाहिए। समाज-विधायक और नीति-विरोधी व्यवसाय करनेवाले भी अपनी आमदनी का छठा हिस्सा देकर प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकते। छठे हिस्से के उस दान में यह संकेत है कि हम अनुत्पादक व्यवसायों का ही विसर्जन करना चाहते हैं। विनोबा के इस नये संकेत का संपूर्ण अर्थ ज्यों-ज्यों प्रकट होगा त्यों-त्यों लोग उसकी पूरी संभावनाओं से परिचित होते जायेंगे।

● ● ●

: ११ :

संपत्ति-दान-यज्ञ का सर्वस्पर्शी स्वरूप

विनोबा के आन्दोलन में महावाक्यों की तरह दो मंत्रों का बार-बार उच्चारण किया जाता है। एक है, "सबै भूमि गोपाल की" और दूसरा, "सब सम्पति रघुपति कै आही।" दान-यज्ञ-आन्दोलन् का संबंध पहले महाकाव्य से है। भूमि भगवान् की बनायी हुई है, वह सृष्टि की एक विभूति है, इसलिए उसपर मनुष्य का स्वामित्व नहीं होना चाहिए। अन्न उपजाने के लिए जो उसपर पुरुषार्थ कर सकता है, उसे उत्पादन का अधिकार मिलना चाहिए। अनुत्पादक का अधिकार जड़-मूल से खत्म होना चाहिए। भू-दान-यज्ञ-आन्दोलन का यह थोड़े में तात्पर्य है।

पुण्यमय आयोजन

परन्तु जो सम्पत्ति श्रम से पैदा होती है, उस पर स्वामित्व किसका हो, यह प्रश्न फिर भी बाकी रह जाता है। जो जितनी सम्पत्ति का उत्पादन करता है, उस सब पर, या उतनी ही पर, क्या उसका अधिकार होगा? यदि ऐसा होगा तो वर्ग-निराकरण होने पर भी आर्थिक असमानता का निराकरण नहीं हो सकेगा। इसलिए विनोबा ने सम्पत्ति-दान-यज्ञ का पुण्यमय आयोजन किया है।

भूदान जिस प्रकार गरीब और अमीर, सबके लिए है, उसी प्रकार सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी गरीब और अमीर, सबके लिए है। जिसके पास प्रचुरता है और वैभव है, वह अपने वैभव के विसर्जन के लिए सम्पत्ति-दान् करे, और जिसके पास अभाव है, वह अपने अभाव में ही सारे समाज को शामिल करे। विनोबा ने तो यहाँ तक कहा है कि जो भूखा है, वह अपनी भूख का भी दान् करे। यह केवल शब्दालंकार नहीं है। उनकी

यह माँग, उनके आन्दोलन के पीछे ज्यो व्यापक दर्शन है, उसकी द्योतक है।

दुःख-दारिद्र्य में भी हिस्सा

विद्यार्थी-दशा में एक पाठ्य-पुस्तक में पढ़ी हुई एक कहानी यहाँ याद आती है। एक मछुवा एक अत्यन्त दुर्लभ जाति की मछली लेकर राजमहल के महाद्वार पर पहुँचा। दरवान ने उसे रोका। मछुवा गिड़-गिड़ाने लगा। दरवान ने कहा—"मछली अनोखी है। किस्मत से ही कभी मयस्सर होती है। तुम्हारे तो भाग खुल गये। जो कुछ दाम मिलेंगे, उनमें से आधे मुझे दोगे तो भीतर जाने दूँगा।" मछुवे ने वादा किया और भीतर गया।

मछली देखकर राजा निहायत खुश हुआ। मछुवे से कहा—"मन-माने दाम माँग लो।" मछुवा बोला—"महाराज! नंगी पीठ पर सौ कोड़ों की माँग है, और कुछ मुराद नहीं।" राजा दंग रह गया। अचरज का ठिकाना नहीं रहा। पूछा—"क्या यह मछुवा बौरा गया है?" मछुवे ने कहा—"महाराज! गरीब की तमन्ना पूरी हो।" राजा ने सिपाही से कहा—"इसे धीरे-धीरे सौ कोड़े लगाओ।" पचास तक गिनती पहुँचते ही मछुवा चिल्ला उठा—"ठहरो-ठहरो, इस सौदे में मेरा एक हिस्सेदार भी है!"

राजा और भी ताज्जुब में डूब गया। पूछा—"कौन तुम्हारा साझे-दार है?" मछुवा बोला—"महाराज! आपके महल का पहरुआ।" मछुवे ने सारा हाल सुनाया। राजा के क्रोध का पारावार न रहा। दरवान बुलाये गया और कसकर पचास कोड़े उसकी नंगी पीठ पर मारे गये।

सम्पत्ति दान-यज्ञ : एक प्रक्रिया

विनोवा के सम्पत्ति-दान-यज्ञ का एक पहलू यह भी है। वे दलित और दरिद्री मानव के दुःख, दारिद्र्य और वेकारी में भी सह-भागी होना जब चाहते हैं। वेकारी बँटेगी, तभी तो काम भी बँटेगा। जो बिलकुल

श्रम नहीं करते और कौटुम्बिक अधिकार से या परम्परा से साधन-सम्पन्न हैं, उन सबकी सम्पत्ति को विनोबा ने 'विपत्ति' की उपाधि दी है। अनुत्पादकों की सम्पत्ति का सम्पूर्ण विसर्जन और अनुत्पादक व्यवसायों का निराकरण सम्पत्ति-दान-यज्ञ का लक्ष्य है। इसलिए उन्होंने सम्पत्ति-दान-यज्ञ के लिए यह शर्त रखी है कि सम्पत्ति के जिस अंश का दान होगा, वह 'विनोबा के निर्देश के अनुसार' खर्च किया जायगा। इस शर्त में उनके आन्दोलन की पकड़ है। वे कहते हैं कि "इस शर्त के द्वारा सम्पत्तिवालों के जीवन में मेरा चंचु-प्रवेश होता है। पहले मैं उससे सम्पत्ति-दान का संकल्प कराऊँगा और उसके पश्चात् तुरन्त साधन-शुद्धि का आग्रह रखूँगा। सम्पत्ति के उपार्जन के उसके जो साधन और मार्ग होंगे, उनका भी शुद्धीकरण दाता को करना होगा।" इस तरह यह सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी एक प्रसंग नहीं, बल्कि एक प्रक्रिया है, जो शीघ्र-से-शीघ्र सम्पत्ति के विसर्जन का वातावरण बनाने में सफल होगी।

धन-संग्रह पाप, सम्पत्ति-दान प्रायश्चित

आज तो वे इतना ही कहते हैं कि जिस किसी के पास थोड़ा या बहुत संग्रह है, वह उसका एक अंश, यथासम्भव षष्ठांश, सम्पत्ति-दान में देना शुरू कर दे। अभिप्राय यह है कि वह अपने आपको उस संग्रह का मालिक न समझे, थातीदार समझे। उसके पास जो संग्रह हो गया है; वह असल में उपयुक्त नहीं है। इसलिए उस संग्रह को बढ़ाना नहीं है, वरन् जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी समाप्त कर देना है। संग्रह का विसर्जन अपरिग्रही समाज की स्थापना के लिए है। सम्पत्ति-दान में यदि इस मूलभूत तत्त्व का विचार नहीं किया गया, तो क्रान्ति की प्रक्रिया में उसका कोई स्थान नहीं रह सकता।

धन-संग्रह पाप है और सम्पत्ति-दान उस पाप का प्रायश्चित है। जो संग्रह अनुत्पादक और अनुपयुक्त व्यवसायों के द्वारा किया गया है, उसे यदि पापपुंज कहा जाय, तो वह कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अनुत्पादक व्यवसाय दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं। एक वे, जो मनुष्य के शारीरिक

तथा मानसिक दोषों पर चलते हैं, जैसे बीमारी पर चलनेवाले, गुनाहों पर चलनेवाले और व्यसनों पर चलनेवाले व्यवसाय। दूसरी श्रेणी में वे व्यवसाय आते हैं, जो ब्याज, किराया, ठेका और दलाली पर चलते हैं। जब तक समाज में ये व्यवसाय चलेंगे, तब तक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के संकट और दोष से लाभ उठाता रहेगा। यही शोषण की जड़ है। इन पेशों और रोजगारों से जो आमदनी होती है, उसका भी एक अंश विनोबा को लोग देना चाहेंगे। लेकिन एक तरफ वे अपनी कमाई बढ़ाते रहें, और दूसरी तरफ विनोबा को द्रव्य-दान देते रहें, तो उनके उस दान से न तो उनकी अपनी नैतिक उन्नति होगी और न समाज-कल्याण ही होगा। होना यह चाहिए कि इन व्यवसायों की तरफ से उनका रुख ही बदल जाय और उसकी 'अभिशा' या 'सहदानी' के रूप में वे सम्पत्ति-दान करें।

अर्थ-शुचित्व और साधन-शुद्धि

विनोबा ने अपने एक भाषण में कहा था कि वे अब अपरिग्रह के व्रत को व्यक्तिगत गुण के रूप में ही नहीं देखना चाहते, बल्कि उसका विकास एक सामाजिक मूल्य के रूप में करना चाहते हैं। व्यक्तिगत गुण का रूपान्तर जब सामाजिक मूल्य के रूप में होता है, तब उसमें समाज-क्रान्ति की शक्ति पैदा होती है। सम्पत्ति-दान की परिपूर्ति शीघ्र से-शीघ्र समाज-विरोधी तथा अनुत्पादक व्यवसायों के निराकरण में होनी चाहिए। इसलिए विनोबा किसी से एकमुश्त द्रव्य-दान नहीं लेते। पाँच साल से कम अवधि के लिए सम्पत्ति-दान का संकल्प-पत्र भी स्वीकार नहीं करते। उपभोग की वस्तुओं का दान स्वीकार करने में भी वे यह तर-तमभाव और विवेक रखते हैं। उदाहरण के लिए अफीम या गाँजे का कोई ठेकेदार उन पदार्थों का दान करना चाहे, या अपनी आमदनी का एक हिस्सा जिंदगी भर उनको देना चाहे, तो भी वे उसे लेने से इनकार कर देंगे। उदाहरण के लिए कोई तमाखू, बीड़ी या सिगरेट का दान-पत्र शुरू कर दे, तो वे उसका विरोध करेंगे। कम-से-कम वे उसे सम्पत्ति-दान

नहीं कहेंगे। सम्पत्ति-दान में अर्थ-शुचित्व और जीविका के शुद्धीकरण का अभिप्राय मूलभूत है।

ट्रस्टीशिप का प्रत्यक्षीकरण

गांधीजी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का व्यापक विनियोग विनोबा संपत्ति-दान-यज्ञ के रूप में कर रहे हैं। इसीलिए उन्होंने उसे 'यज्ञ' संज्ञा दी है। यज्ञ में बलिदान होता है, कुर्बानी होती है। दान में और यज्ञ में एक मूलभूत अन्तर है। अपनी सारी जरूरतें पूरी तरह से और अपनी सारी इच्छाएँ पर्याप्त मात्रा में पूरी करने पर जो शेष रह जाता है, उसका हम अक्सर दान करते हैं। दान उर्वरित या अतिरिक्त वस्तु का किया जाता है। परन्तु यज्ञ में सर्वस्व की आहुति दी जाती है। चाहे हमारी आवश्यकताएँ पूरी हों या न हों, हम अपनी विपन्नता में से ही यज्ञ में आहुति डालते हैं। नचिकेता के पिता ने विश्वजित्-यज्ञ किया। उसके पास सिर्फ क्षीण और शुष्क पयोधरवाली गायें ही रह गयीं थीं। उनका भी उसने दान कर दिया। उसने 'मरी गाय ब्राह्मण को' नहीं दी। जो कुछ था, वही दिया। सम्पन्नता नहीं थी, इसलिए अपनी विपन्नता का ही हविर्भाग किया। विनोबा कहते हैं, श्रमिको, तुम्हारे पास श्रम-शक्ति है, तुम मुझे उसी का दान दो। अपनी शक्ति का तुम दान करोगे, तो तुम्हारी विपन्नता, तुम्हारा अभाव और तुम्हारी दरिद्रता भी लोक-व्यापी बन जायगी और बँट जायगी। जो तुम्हारे पास है, वह तुम देते हो, तो तुम्हारी जरूरत सबकी जरूरत हो जाती है और तुम्हारी मुसीबत सबकी मुसीबत हो जाती है।

सर्वंकष और मूलग्राही रूप

इस प्रक्रिया में एक बहुत गहन और मूलगामी अभिसंधि है। हमारे सामाजिक जीवन की तह तक पहुँचनेवाला एक गहरा आशय है। आज समाज में जो श्रम-जीवी हैं और उत्पादक हैं, वे भी श्रमनिष्ठ नहीं हैं। उन्हें परिश्रम और उत्पादन में अभिरुचि नहीं है। और जो अनुत्पादक है, वह तो श्रम से परहेज करता ही है। श्रमनिष्ठा के अभाव से उत्पादन

की सामाजिक प्रेरणा कदापि पैदा नहीं हो सकती। इसलिए विनोबा श्रमिकों को भी सम्पत्ति-दान की दीक्षा देते हैं। जो महज मजदूर है और और मालिक नहीं है, उसे वे भूदान की प्रक्रिया की मार्फत उत्पादन के साधनों का मालिक बनाना चाहते हैं, लेकिन साथ-साथ उसे यह दीक्षा भी देना चाहते हैं कि वह अपने परिश्रम से निर्मित वस्तुओं का या अपनी मेहनत की कमाई का मालिक नहीं है। जिस प्रकार करोड़पति और अरबपति, तथा लखपति और सेठ-साहूकार अपनी सम्पत्ति के 'परिरक्षक' हैं, उसी प्रकार एक गरीब मजदूर भी अपनी कमाई का मालिक नहीं है, किन्तु 'परिरक्षक' है। इसलिए वह भी सम्पत्ति-दान करेगा। इतना ही नहीं, जिस भूमिहीन को भूमि दी जायगी, वह भी जब पहली फ़सल काटेगा, तो, दरिद्रनारायण को भोग चढ़ायेगा। नैवेद्य समर्पण करने में प्रभूत-सम्पत्ति और अत्यल्प-सम्पत्ति का विचार नहीं किया जाता। लकड़हारा भी अपने गाढ़े पसीने की कमाई में से भगवान् के चरणों पर नैवेद्य चढ़ाता है। विनोबा का संपत्ति-दान-यज्ञ इतना सर्वंकश और मूल्यग्राही है।

संपत्ति-दान का रूप : नैमित्तिक और नित्य

इस सम्पत्ति-दान-यज्ञ के दो पहलू हैं। जब तक अमीरी और गरीबी का निराकरण नहीं हुआ है, तब तक, और तभी तक, के लिए हरेक सम्पत्तिधारी अपने आपको केवल 'न्यासरक्षक' (ट्रस्टी) समझे। किसी तरह उसके पास जनता की धरोहर इकट्ठी हो गयी है। वह उसे संभाल कर शीघ्र-से-शीघ्र वर्ग-निराकरण की क्रांति के काम में लगा दे। इस प्रकार अमीरों का सम्पत्ति-दान-यज्ञ केवल संक्रमण-काल के लिए है। वह संधि-काल का परम धर्म है।

कोई यह न समझे कि हम सभी भले-बुरे उपायों से धन कमाते जायेंगे और विनोबा के सम्पत्ति-दान-यज्ञ में अपनी सहूलियत के मुतायिक दान देकर इह-लोक में कीर्ति और पर-लोक में सद्गति भी प्राप्त कर लेंगे। पुराने सम्पत्ति-दान में मन्दिर बनवाना, घाट बनवाना, धर्मशालाएँ

बनवाना, अस्पताल और स्कूल खोल देना, इत्यादि-इत्यादि कई तरह के लोक-कल्याणकारी कामों का समावेश होता था। विनोबा का सम्पत्ति-दान-यज्ञ केवल लोक-कल्याणकारी आन्दोलन नहीं है। वह लोक-जीवन में क्रांति करना चाहता है। इसलिए जिस दिन वह सफल होगा, उस दिन न संग्रह के लिए अवसर होगा और न उस प्रकार के दान के लिए अवकाश ही होगा। यह सम्पत्ति-दान असल में भावना और बुद्धि के दान का प्रतीक है। यदि गहराई से सोचा जाय, तो विनोबा जो बुद्धि-दान चाहते हैं, वह भी केवल बुद्धिजीवियों का समय-दान नहीं है, बल्कि परिग्रह की वृत्ति का विसर्जन ही वास्तव में उसका अभीष्ट है।

सम्पत्ति-दान का दूसरा पहलू नित्यधर्म का है। परिश्रम से जो कुछ पैदा होता है, वह सब जन-जनार्दन का है। व्यक्ति के पुरुषार्थ के लिए समाज में उसे जो सुयोग मिलता है वह समाज का दिया हुआ बहुत बड़ा वरदान है। इसलिए अपने पुरुषार्थ के प्रयोग से व्यक्ति जो कुछ निर्माण करता है, उसपर उसे समाज की ही सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। उत्पादक का सम्पत्ति-दान-यज्ञ इस नित्य सामाजिक धर्म का प्रतीक है। अपनी आवश्यकता के लिए वह जो कुछ लेता है, वह समाज का प्रसाद है। इस प्रकार वह समाज को अधिक-से-अधिक देता है और उससे कम-से-कम लेता है। इस तरह के सम्पत्ति-दान-यज्ञ में से श्रमनिष्ठा का विकास होता है। श्रमिक की बुद्धि और भावना में परिवर्तन होता है। विनोबा के श्रम-दान-यज्ञ की तरह उनका सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी बुद्धि-युक्त है।

जीवन-संशोधन का संकल्प

अस्तेय और अपरिग्रह के व्रतों की सामाजिक मूल्यों के रूप में प्राण-प्रतिष्ठा तभी होगी, जबकि सम्पत्ति और स्वामित्व के प्रति एक बिलकुल नयी वृत्ति छोटे और बड़े मालिकों के तथा गैरमालिक-मजदूरों के चित्त में पैदा होगी। इसके लिए सबसे पहले इस वृत्ति का आविर्भाव और विकास हमारे प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के मन में होना चाहिए।

इस देश के निहत्थे लोगों को जब हथियारबन्द फौजों का मुकाबला करना था, तब गांधी ने उन्हें निःशस्त्र वीरता की प्रक्रिया सिखायी। इस प्रक्रिया का मूलभूत सिद्धांत यह है कि हथियार का मुकाबला हथियार से न किया जाय। सामनेवाले के हाथ में अगर हथियार हो, तो हमारे मन में भी हथियार नहीं होना चाहिए। गांधी ने हमसे कहा कि "नीति के रूप में ही क्यों न हो, अगर निःशस्त्र-प्रतिकार के मार्ग पर चलना चाहते हो, तो हथियार का उपयोग करने की इच्छा सच्चे दिल से छोड़ देनी चाहिए।" इसीलिए हथियारबन्द सिक्ख और हथियार-परस्त पठान चुपचाप हथियारों का प्रहार सहते गये, परन्तु उन्होंने अपने हथियारों का प्रयोग नहीं किया। तात्कालिक नीति के अनुसरण में भी सचाई और ईमानदारी की जरूरत होती है।

अहिंसा के लिए जो नियम लागू था, उससे कहीं अधिक मात्रा में वह नियम अस्तेय और अपरिग्रह के लिए लागू है। मालकियत का मोह और उसकी ममता सिर्फ थोड़ी देर के लिए या नियत अवधि के लिए छोड़ देने से समाज का नक्शा नहीं बदलेगा। स्वामित्व-भावना और सम्पत्ति का लोभ ही जड़मूल से छोड़ देना होगा। सत्याग्रही प्रतिकार की प्रक्रिया की मार्फत गांधीजी ने शस्त्र-सत्ता के निराकरण का एक प्रभावशाली प्रयोग किया। भूदान और सम्पत्ति-दान की यज्ञरूप प्रक्रिया के द्वारा विनोबा धन-सत्ता के निराकरण का सफल प्रयोग कर रहे हैं। तात्कालिक नीति के रूप में अहिंसा का स्वीकार करना उस परिस्थिति में पर्याप्त था। परन्तु यहाँ तो संग्रह का विसर्जन और सम्पत्ति का दान सिद्धान्त के रूप में और नित्य अनुष्ठेय धर्माचरण के रूप में ही स्वीकारना पड़ेगा। यह निष्ठा कार्यकर्ताओं में जिस मात्रा में होगी, उसी मात्रा में हमें सफलता प्राप्त होगी। मुख्य प्रश्न वृत्ति का है, और उस वृत्ति के अनुरूप जीवन-संशोधन के संकल्प का है।

भूदान संबंधी शंका-समाधान

भूदान-यज्ञ के बारे में इधर सभी तरह की अजीबो-गरीब बातें कही जाने लगी हैं।

सबसे पहले यह एतराज किया गया है कि भूमिदान गरीबी को बाँटता है—मिटाता नहीं है। असल में सोचने की बात यह है कि क्या गरीबी बँटेगी तो अमीरी बनी रहेगी? देश की सारी गरीबी अगर बँट जाय तो सारी अमीरी भी बँट जायगी। गरीबी और अमीरी, दोनों बँटने के बाद जो सबके लिए समान हालत और हैसियत होगी, उसमें फिर सब मिलकर तरक्की करेंगे। सबको अमीर बनाने का पहला कदम है, गरीबी और अमीरी बाँट लेना। सबको सुखी बनाने का पहला कदम है दुखियों के दुःख में शामिल होना।

भूदान-आन्दोलन का उद्देश्य

भूदान-यज्ञ आन्दोलन का मन्शा असल में मालकियत बाँट देने का है। मालकियत मिटाने का पहला चरण है मालकियत को बाँट देना। इसके लिए मालकियत की बुनियाद ही बदल देनी होगी। आज तो यह हालत है कि मालकियत खरीदी जा सकती है और मालकियत छीनी जा सकती है। उत्पादन का साधन जिसने मोल ले लिया है, वह भी मालिक बन गया है और उत्पादन के साधन पर चालबाजी या जोर-जबरदस्ती से जो कब्जा कर सका, वह भी मालिक बन गया है। भूदान में उत्पादक को मालिक बनाने की तजवीज और कोशिश है। यह गरीबी का बँटवारा नहीं है, समाज में से गरीबी की जड़ खोदने का यह क्रान्तिकारी प्रयास है।

मालकियत के बँटवारे के साथ-साथ भूदान में मेहनत का बँटवारा करने की तजवीज भी है। एक वाक्य में भूमि-दान क्रान्ति के पहले कदम के तौर पर मालकियत की बुनियाद बदलता है, श्रमजीवी की भूमिका (हैसियत) बदलता है और मालकियत की तरफ से मालिक-मजदूर दोनों का रुख बदल देता है।

भूमिदान का मंजिले-मकसद यह है कि समाज में मालिक कोई नहीं रहेगा। मालकियत मिटाने के आज तक समाज ने दो तरीके आजमाये हैं। एक अपहरण का और दूसरा जब्ती या कुरकी का। भूमिदान इन दोनों प्रक्रियाओं की जगह नागरिक की स्वयंप्रेरणा जाग्रत करने की कोशिश करता है। भूदान में जो दान की प्रक्रिया है, वह दर असल नागरिकों में सार्वजनिक हित की प्रेरणा या नागरिक वृत्ति जाग्रत करने की प्रक्रिया है। आज जब कि पूँजीवादी वातावरण में जनतंत्र भी सौदे और नीलाम की चीज बन रहा है, नागरिकों में सार्वजनिक-चारित्र्य और सामाजिक सत्प्रेरणा बढ़ाने का रास्ता और कोई नहीं हो सकता। इसलिए दान की यह प्रक्रिया सिर्फ अमीरों तक ही महदूद नहीं है। इसका लक्ष्य नागरिक की मर्जी से और सहयोग से मालकियत का विसर्जन कराना है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

कहा जाता है कि गांधीजी मालदारों को और दौलतमंदों को थाती-दारी (ट्रस्टीशिप) सिखाते थे। इससे गरीब और अमीर में दोस्ती के ताल्लुकात बने रहते थे। भूदान मजदूरों में मालकियत का जज्बा पैदा करके मालिक-मजदूर में तनाजा बढ़ाता है। इस आक्षेप में ट्रस्टीशिप के बारे में गलतफहमी और खाम-ख्याली है। यह कहना कि गांधीजी अमीरों को अमीर के रूप में और गरीबों को गरीब के रूप में सदा के लिए बनाये रखना चाहते थे, उनकी पवित्र स्मृति का अपमान करना है। दरअसल ट्रस्टीशिप के दो पहलू हैं। जो मालिक हैं, उनके लिए ट्रस्टीशिप की योजना सिर्फ संक्रमण-काल तक सीमित है। हमें माल-कियतका विसर्जन करना है और अहिंसा से करना है। हिंसात्मक या सत्तावादी क्रान्ति में इसके लिए मजदूरों की तानाशाही की आरिजी तजवीज है। गांधीजी की अहिंसक प्रक्रिया में ट्रस्टीशिप है। तुम अपने को मालिक मत समझो, इसका आशय यह है कि मालकियत बढ़ाने की या रखने की नीयत छोड़ दो और उसका शीघ्र से शीघ्र विसर्जन करने की तरफ कदम बढ़ाते जाओ। भूदान ट्रस्टीशिप

विचार को प्रत्यक्ष आचार के क्षेत्र में लाने का क्रान्तिकारी कदम है।

यह समझना भी गलत है कि ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त सिर्फ अमीरों के लिए है। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त जितना अमीरों के लिए है उतना ही गरीबों के लिए भी है। यह उसका दूसरा और शाश्वत पहलू है। जिसके पास दौलत और मालकियत है, वह अगर ट्रस्टी है तो जो श्रम-संपन्न हैं याने मेहनतमंद हैं वह भी ट्रस्टी ही हैं।

नागरिक सुखी पशु न बनें

और भी एक दिलचस्प बात कही गयी है कि मजदूर-पेशा व्यक्ति को उसकी मजदूरी के बदले काफी मेहनताना मिलना चाहिए। अगर कोई दयानतदार शख्स यह कहे कि घोड़े को उसकी मेहनत के बदले में भरपूर दाना, पानी और खुराक मिले; ताँगा किसका है और सवारियाँ कौन-कौन-सी हैं, इससे उसे क्या मतलब ? तो हमारे मुँह में ताला पड़ जायगा। इसका हम क्या जवाब दें ? बहुत अदब के साथ इतना अर्ज करेंगे कि लोकशाही में हम नागरिक को सुखी और संतुष्ट पशु नहीं बनाना चाहते, जिम्मेवार और आजाद इन्सान बनाना चाहते हैं।

भ्रामक दलील

यह सवाल भी पूछा जाता है कि सबको समान रूप से विपन्न और दरिद्री बना देने में आखिर आप क्या हासिल करेंगे ? आज जिन लोगों का रहन-सहन कुछ ऊँचा है, उनको भी वहाँ से नीचे उतार देंगे। क्या इसकी बनिस्बत ज्यादा मुनासिब यह नहीं होगा कि हम साधारण नागरिक के जीवन-मान में तरक्की करने की कोशिश करें ? इस दलील में भी एक भयंकर भ्रम छिपा हुआ है। हम यह भूल जाते हैं कि पूँजीवादी संदर्भ में जितना उत्पादन बढ़ता है उतना ज्यादातर विनिमय और विक्रय की प्रेरणा से बढ़ता है। चीजें या तो बाजार के लिए बनती हैं या अदल-बदल के लिए। इसलिए सबसे पहले संदर्भ बदलने की कोशिश होनी चाहिए, तब चीजों की जरूरात से ही उत्पादक के जीवन-मान में उन्नति होगी। तब तक नहीं। भूदान संदर्भ बदलने की जनतांत्रिक प्रक्रिया है।

इस बात का भी स्मरण रहे कि केवल सुख की सामग्री मिल जाने से ही नागरिक के रहन-सहन की सतह ऊपर नहीं उठती। उसका रुतबा भी बढ़ना चाहिए। हम काम और आराम को बाँटकर उत्पादक परिश्रम के लिए शौक पैदा करना चाहते हैं। हम हर नागरिक को केवल सुखी और सन्तुष्ट व्यक्ति ही नहीं बनाना चाहते, बल्कि स्नेहशील और सहयोगी पड़ोसी भी बनाना चाहते हैं। केवल उत्पादन बढ़ाने से यह सिद्ध नहीं होगा।

भूदान में मालकियत की भावना के निराकरण की तजवीज है। इसका साक्षात्कार जमीन के बँटवारे के वक्त होता है। कुछ लोगों के मन में यह भ्रम है कि बँटवारा करनेवाले लोग समाज में अपनी ताकत और प्रभाव बढ़ाने के लिए अपनी मर्जी के मुताबिक बँटवारा कर सकते हैं। उन्हें शायद इस बात का पता नहीं है कि बँटवारा भूमिहीनों की सर्व-सम्मति से होता है। किसी संस्था, गिरोह या सार्वजनिक सभा के बहुमत से नहीं। और तो और, भूमिहीनों के भी बहुमत से भी नहीं होता। भूमिहीनों का ऐसा एक मत हमने स्वयं कई जगह देखा है। एक-एक भूमिहीन जब अपना अधिकार अपनी मर्जी से छोड़ने के लिए खड़ा होता है तो गरीब के चीथड़ों के भीतर छिपी हुई दिव्य मानवता का साक्षात्कार होता है।

अर्वाचीन संप्रदायवादियों को भूदान में प्रतिगामी वृत्ति की बू मिलती है। उन्होंने यंत्रवाद को विज्ञान-निष्ठा माना है और यंत्र-सत्ता के उत्कर्ष को तथा मानवीय सत्ता के अपकर्ष को आधुनिक सभ्यता का मुख्य लक्षण समझा। यंत्रों के लिए निरपवाद पक्षपात या यंत्रों का निरपवाद विरोध, दोनों अविवेक के लक्षण हैं। हमारा न यंत्रों से कोई वैर है और न कोई मोहब्बत ही है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने में अगर प्रगतिशीलता है तो क्या उत्पादन के साथ मनुष्य की कला और सौन्दर्य-भावना को जोड़ देने में प्रतिगामित्व है? हमारा इतना ही आग्रह है कि उत्पादक परिश्रम में मनुष्य की कला और उसके गुणों के विकास के लिए भी गुंजाइश हो। परिश्रम में कला और आनन्द मिला देने से क्या वह प्रतिगामी बन जाता है? भूदान-यज्ञ-आन्दोलन जिस सर्वोदय विचार की बुनियाद पर खड़ा है, वह विचार अर्वाचीन-पुरागामी सम्प्रदायों से सांस्कृतिक उन्नति की दिशा में आगे कदम बढ़ाता है। इसीलिए परम्परागत प्रगतिवादियों को अटपटा मालूम होता है।

विनोबा के साथ

(*निर्मला देशपांडे*)

विद्वान लेखिका ने विनोबाजी के साथ पद-यात्रा में रहकर जो मधुर अनुभव और विचार प्राप्त किये, प्रकृति देवी और जनता-जनार्दन का जो पावन दर्शन किया, उसका सुन्दर वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, वह पढ़ने में उपन्यास का और विनोबा जी के सान्निध्य का आनन्द प्रदान करता है। पृष्ठ-संख्या २१६

दाम : एक रुपया

*

*

त्रि वे णी

(*विनोबा*)

अपने नित्य के प्रार्थना-प्रवचनों में विनोबा जी वेदोपनिषद, गीता, स्मृतियों तथा अन्यान्य धर्म-ग्रंथों के वचनों का जो चिरनूतन और युगानुकूल विवेचन करते हैं, वह भव्य, आकर्षक और मुग्ध करनेवाला होता है। छोटा बालक भी उसे समझ ले, इतनी सरल भाषा में गम्भीर बात वे कह देते हैं। उनमें से कुछ का संकलन सुश्री निर्मला बहन ने किया है। इसमें अवगाहन करने पर आत्म-शुचित्व की उपलब्धि की जा सकती है।

दाम : आठ आना